उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१२ १९९३ जनवरी अंक १

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

सम्पादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

सम्पादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम

जयप्रकाश नगर,

छपरा— ८४१३०१

(बिहार)

फोन : ०६१५२-४२६३६

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य —	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

कामवासना को पूरी तरह से वशीभूत करने की कोशिश करो। ऐसा करने में यदि कोई सफल हो सके तो उसके भीतर मेधा नाड़ी नाम की एक नयी सूक्ष्म नाड़ी उत्पन्न होती है (वह निम्नगामी शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाती है)। इस मेधा नाड़ी के खुलने के साथ ही सर्वोच्च परमात्मज्ञान प्राप्त होता है।

(२)

कामिनी और कांचन ने सारे संसार को पापपंक में डुबो रखा है। स्त्रियों की ओर यदि तुम भगवती जगदम्बा की दृष्टि से देखो तो तुम उनके हाथ से बच सकते हो। जब तक कामिनी-कांचन की तृष्णा नहीं बुझ जाती तब तक भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते।

(३)

वैसे तो तोता दिनभर 'राधाकृष्ण' रटता है, परन्तु जब बिल्ली धर दबाती है तो वह 'राधाकृष्ण' भूलकर 'टें-टें' करने लगता है। वैषयिक सुख-समृद्धि की आशा से संसारी लोग भी बीच-बीच में हरिनाम लेते हैं और दान-धर्म आदि पुण्य कर्म किया करते हैं; परन्तु दुःख-दैन्य-विपत्ति या मृत्यु का समय आते ही वे यह सब भूल जाते हैं।

(४)

जब भगवान् ने तुम्हें संसार में ही रखा है तो तुम क्या करोगे? उनकी शरण लो, उन्हें सब कुछ सौंप दो, उनके चरणों में आत्म समर्पण करो, ऐसा करने से फिर कोई कष्ट नहीं रह जाएगा। तब तुम देखोगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।

विवेकानन्द पञ्चकम्

—स्वामी अमृतानन्द

वीरेश्वरांशं विबुधावतंसं "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थम्" ।
कारुण्यमूर्ति कमनीयरूपं तं देशिकेन्द्रं सततं नमामि ॥१॥

विवेकसंज्ञं निहितारिषट्कं अद्वैतसिद्धान्तविमर्शदक्षम् ।
सर्वाश्रयं सर्वजनैः प्रपूज्यं तं देशिकेन्द्रं सततं स्मरामि ॥२॥

न्यग्रोधवत् सर्वजनाश्रयस्त्वं भवेरिति प्रीतगुरुप्रशंस्यम् ।
दीनैकबन्धुं दीननाथदीप्तिं तं देशिकेन्द्रं सततं भजामि ॥३॥

ज्ञानासिना छेदितमोहग्रन्थिं निरंजनं निःसृतसर्वभ्रान्तिम् ।
अज्ञानमातंग - समूहसिंहं तं देशिकेन्द्रं सततं नमामि ॥४॥

"अष्टादशैः शिष्टगुणैरुपेतं" भवब्धिमग्नस्यजनस्य पोतम् ।
तृणीकृता येन तदष्टसिद्धिः तं देशिकेन्द्रं सततं स्मरामि ॥५॥

भावार्थ—वीरेश्वर शिव के अंश से उत्पन्न, विद्वानों के अलंकार स्वरूप, वेदान्त तत्व के वास्त अर्थज्ञाता, दयालु और कमनीय रूप से सम्पन्न आचार्य प्रवर विवेकानन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।१।

काम क्रोधादि षड् रिपुओं को जीतनेवाले, अद्वैतसिद्धान्त की व्याख्या करने में सुदक्ष, सबके आ स्थल एवं पूजनीय विवेकानन्द नाम से प्रसिद्ध आचार्य प्रवर का मैं सर्वदा स्मरण करता हूँ ।२।

'विशाल वट वृक्ष की भाँति तुम सब को आश्रय प्रदान करोगे', प्रसन्न होकर स्वयं गुरुदे जिनकी इस प्रकार प्रशंसा की थी, जो दरिद्रजनों के एकमात्र मित्र हैं, सूर्य की भाँति तेजस्वी हैं—आचार्य प्रवर विवेकानन्द का मैं भजन करता हूँ ।३।

ज्ञानरूपी खड्ग से मोह ग्रंथि को काटनेवाले, माया से परे, समस्त भ्रांतियों से दूर एवं अज्ञान गजराज के लिए सिंह स्वरूप आचार्य प्रवर विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ ।४।

शिष्टसुलभ अठारहों दैवीशक्ति से युक्त होकर जो संसार सागर में डूबे लोगों के उद्धारकारी थे, (श्रीगुरु प्रस्तावित) आठों प्रकार की सिद्धियों को जिन्होंने तृण की भाँति तुच्छ सम था, उन आचार्य प्रवर विवेकानन्द का मैं सदा स्मरण करता हूँ ।५।

सम्पादकीय सम्बोधन

स्वामी विवेकानन्द और आधुनिक भारत का निर्माण

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

परमाराध्य भगवान् श्रीरामकृष्ण देव, परमाराध्या भगवती सारदा देवी और विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी महाराज की असीम अहेतुकी कृपा से विवेक शिखा बारहवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। इस अवसर पर हम अपने समस्त पाठकों को नव वर्ष की मंगल कामना अर्पित करते हैं।

मित्रो, भारत की वर्तमान अवस्था से हम सब चिन्तित हैं। हमें विचार करना होगा कि नये भारत के निर्माण में स्वामी विवेकानन्द की क्या भूमिका हो सकती है।

कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रोम्या रोलाँ को लिखित एक पत्र में इस आर्षवाणी का उद्घोष किया था कि "यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिये। उनमें सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं।" कितनी विलक्षण एवं अद्भुत वाणी है! इन दो वाक्यों के माध्यम से ही गुरुदेव ने स्वामीजी के व्यक्तित्व एवं आधुनिक भारत के निर्माण में उनकी प्रासंगिकता की घोषणा कर दी है। यदि आधुनिक भारत का निर्माण करना है तो पहले हमें भारत के शाश्वत-सनातन रूप को, उसके विगत पांच हजार वर्षों से क्रमागत अखंड अनाहत चैतन्य स्वरूप को जानना होगा। और अगर हम भारत के आत्मस्वरूप का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं तो निश्चय ही हमें स्वामी विवेकानन्द का अभिज्ञान प्राप्त करना होगा। अर्थात उन्हें जाने विना भारत के मूल स्वरूप को समझा ही नहीं जा सकता क्योंकि विवेकानन्द अपने ही शब्दों में स्वयं एक घनीभूत भारत थे।

स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। किन्तु उनके अग्निदीप्त विचारों ने २० वीं शताब्दी के भारत और विश्व की चेतना को झकझोर दिया था। हमारे सभी प्रमुख जन नायकों—महात्मा गाँधी, तिलक, सुभाषचन्द्र बोस, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि—ने स्वामीजी से प्रेरणा प्राप्त कर देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया था और भारत को प्रगति पथ पर ले चलने का उनसे प्रकाश ग्रहण किया था। राष्ट्रकवि दिनकर ने ठीक ही लिखा है—"विवेकानन्द की प्रतिमा लोकोत्तर थी···। वर्तमान भारत जिस ध्येय को लेकर उठा है, उसका सारा आख्यान विवेकानन्द कर चुके थे। बाद के महात्मा और नेता उस ध्येय को कार्य का रूप देने का प्रयास करते रहे हैं। जिस स्वप्न के कवि विवेकानन्द थे, गाँधी और जवाहर लाल उसके इंजीनियर हुए।" आज बीसवीं शताब्दी की सांध्य वेला आ गयी है। हम इक्कसवीं शताब्दी की प्रत्यूष वेला के द्वार पर खड़े हैं। और इस नयी शताब्दी में नये भारत के निर्माण में हमें जिस प्रकाश स्तंभ की आवश्यकता है उसकी संज्ञा भी विवेकानन्द ही हैं। उनके गंभीर, मनोरम-मोहक, तर्कसंगत और व्यावहारिक संदेश की भारत के नवनिर्माण के लिए जितनी सार्थकता और प्रासंगिकता है, उतनी शायद कभी नहीं थी। इसी

से रूस के प्रख्यात् भाषाविद् एवं विवेकानन्द साहित्य के अध्येता ई० पी• चेलिशेव ने श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के प्रसंग में २८ नवम्बर, १९८३ को अपने एक पत्र में स्वामी लोकेश्वरानन्द का लिखा था—"They are not simply religious leaders, they are much more than that. They are prophets of peace, harmony and brotherhood. Their message was relevant in the past in india and in the world at large, but is still more relevant in the present Indian context and in the context of the contemporary world"

अर्थात् "वे (श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द) केवल धर्म-नायक नहीं हैं। वे इससे कहीं अधिक हैं। वे शान्ति, सामंजस्य और भ्रातृत्व के मसीहा हैं। उनका संदेश विगतकालीन भारत और सामान्यत: सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक था. किन्तु आधुनिक भारतीय संदर्भ में और समकालीन विश्व के संदर्भ में यह आज और अधिक प्रासंगिक है।" चेलिशेव के इस कथन में किसी कवि की भावुकता नहीं, एक चिन्तनशील मनीषी की युक्तियुक्तता ही व्यक्त हुई है।

२ आधुनिक भारत का निर्माण : प्रयोजन और योजनाएँ :

आज स्वाधीनता प्राप्ति के ४० वर्षों के उपरान्त जब हम अपनी उपलब्धियों की ओर प्रत्यावलोकन करते हैं तो लगता है कि जहाँ हमने विज्ञान, कृषि अभियंत्रणा एवं कुछ अन्य क्षेत्रों में यथेष्ट प्रगति कर ली है वहीं हम मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार, कदाचार, पापाचार, हिंसा, जातीयता, धार्मिक असहिष्णुता, साम्प्रदायिक संघर्ष, शैक्षिक अवमूल्यन आदि रोगों के भयंकर शिकार भी हो गये हैं। अन्न के उत्पादन में राष्ट्र आत्मनिर्भर हुआ है, किन्तु वितरण की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण प्रति वर्ष गरीबी और असमानता बढ़ ही रही है। हम आठवीं योजना के दौर से गुजर रहे हैं पर लगता है कहीं हमसे भयंकर चूक हो रही है, जिसके कारण हम गंतव्य की ओर नहीं बढ़ पा रहे हैं।

वह चूक क्या है? चूक यह है कि हमारे पास वह स्पष्ट मानचित्र नहीं है जिसके आधार पर हम आधुनिक भारत का पुनर्निमाण करना चाहते हैं। जब हम एक घर बनाना चाहते हैं तब हमें एक नक्शे की जरूरत होती है। हम एक ऐसे शिल्पी के पास जाते हैं जिसे इसकी पूरी जानकारी होती है। अत: हमें आज स्वयं से यह प्रश्न पूछना होगा कि हमें कैसा भारत चाहिए? उस भवन का शिल्प कैसा हो?

हमें मार्गदर्शन की आवश्यकता है। ऐसा नक्शा तैयार करने के लिए, जिसे हमारे युवजन कुशलता, ऊर्जा और समर्पण के भाव से कार्य में परिणत कर सकें, ऐतिहासिक दृष्टि एवं परिप्रेक्ष्य से सम्पन्न एक महान दूरदर्शी शिल्पी की सहायता लेने की हमें आवश्यकता है। वह शिल्पी स्वामी विवेकानन्द हैं।

३ स्वामी विवेकानन्द : आधुनिक भारत के शिल्पी :

विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में उनकी योग्यतम शिष्या भगिनी निवेदिता ने कहा था—"स्वामी विवेकानन्द महान् प्रेमी हैं। उनकी मातृभूमि ही उनकी आराधना की साम्राज्ञी है"। वस्तुत: स्वामीजी के प्रति यह एक सही समझ है। स्वामी विवेकानन्द के पूर्व भारत ने अनेक संत-महात्मा उत्पन्न किये, किन्तु उन सबने व्यक्तिगत मोक्ष का ही सन्देश दिया था। स्वामी विवेकानन्द पहले संन्यासी

थे जिन्होंने धर्म को जीवन से जोड़ा, समाज और राष्ट्र से जोड़ा। उन्होंने धर्म को पहाड़ और कंदराओं से उतारकर हमारे रोज के जीवन में ढालने का बंदनीय कार्य किया। अब तक के हमारे शास्त्र बताते थे कि प्रत्येक जीव ब्रह्म है, वही ब्रह्म स्त्री है वही पुरुष है, वही युवक-युवती है और लाठी टेककर चलने वाला वृद्ध भी वही है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में हम कहा करते थे–'दूरं अपसर रे चाण्डाल''–अरे चण्डाल दूर हट। स्वामीजी ने कहा–"असल में प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में शुद्धाद्वैत की सत्यता को प्रमाणित करना होगा। श्री शंकर इस अद्वैतवाद को जंगलों और पहाड़ों में रख गये हैं। मैं अब इसे वहाँ से लाकर संसार और समाज में प्रचारित करने आया हूँ।" उन्होंने पहली बार घोषणा की "जो मन्दिर में शिव की उपासना करते हैं उनकी पूजा प्रारम्भिक है और जो जीव को शिव मानकर उनकी पूजा करते हैं उनसे शिव अधिक प्रसन्न होते हैं क्योंकि यही असली पूजा है। यही सच्ची उपासना का सार है।"

स्वामी विवेकानन्द ने एक परिव्राजक के रूप में सारे भारत की यात्रा कर देश की जनता की दुरवस्था को देखा था और उनका हृदय करुणा से फट पड़ा था। उन्हें लगा था कि जब तक गरीबों की अवस्था में सुधार नहीं होता, भारत के नव-निर्माण की आशा नहीं की जा सकती। नव-निर्माण क्यों? इसलिए कि भारत तो सनातन है पर इसके ऊपर जो रूढ़ियों की काई जम गयी है उसे जब तक मिटाया नहीं जाता तब तक भारत अपने वास्तविक रूप में नहीं प्रतिष्ठित हो सकेगा। और भारत का प्राण धर्म है। धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा से ही भारत का नव-निर्माण हो सकेगा। उन्होंने घोषणा की–"प्रत्येक राष्ट्र की एक विशिष्टता होती है, अन्य सब बातें उसके बाद आती है। भारत की विशिष्टता धर्म है। देश का प्राण धर्म है, भाषा धर्म है तथा भाव धर्म है। तुम्हारी राजनीति, समाजनीति, रास्ते की सफाई, दुर्भिक्ष पीड़ितों को अन्नदान आदि आदि चिरकाल से इस देश में जैसे हुआ है, वैसे ही होगा अर्थात् धर्म के द्वारा यदि होगा तो होगा अन्यथा नहीं। अतः यदि तुम धर्म का परित्याग करने की चेष्टा में सफल हो जाओ और राजनीति, समाजनीति या किसी दूसरे चीज को अपनी जीवन शक्ति का केन्द्र बनाओ तो उसका फल यह होगा कि तुम एक बारगी नष्ट हो जाओगे।"

स्वामीजी ने देश के पतन के कारण पर चिन्तन किया और कहा–"मैं समझता हूँ कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जन-समुदाय की उपेक्षा है, और वह भी हमारे पतन का कारण है। भारत में दो बड़ी बुरी बाते हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति-भेद द्वारा पीसना।" निम्न जाति के लोगों पर हो रहे अत्याचार से क्षुब्ध होकर उन्होंने मर्मान्तिक स्वर से कहा "पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोटता हो। क्या हम मनुष्य हैं? हे भगवान्! कब एक मनुष्य दूसरे से भाई चारे का बर्ताव करना सीखेंगे?

तो फिर भारत के नव-निर्माण का उपाय क्या है? स्वामीजी ने इस पर गहराई से चिन्तन किया और कहा–"हमने राष्ट्र की हैसियत से अपना व्यक्तिभाव खो दिया है"। हमें राष्ट्र को उसके खोये व्यक्तित्व को वापस लाना है और जन-समुदाय को उठाना है। भारत को उठाना होगा, गरीबों को भोजन देना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा और पुरोहित-प्रपंच की बुराइयों का निराकरण करना होगा।......धर्म की बात सुनाना हो तो पहले इस देश के लोगों के पेट की चिन्ता को दूर करना होगा।

पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं।

४ शोषण मुक्त एवं विशेषाधिकार रहित समाज :

स्वामीजी ने किसी प्रकार के शोषण से मुक्त एवं विशेषाधिकार से रहित भारतीय समाज की कल्पना की थी। उनकी दृष्टि में विशेष सुविधा-भोग करने की धारणा मानव जीवन के लिए कलंक स्वरूप है। शारीरिक, आर्थिक-बौद्धिक एवं आध्यात्मिक सुविधाओं में से सबसे निकृष्ट है आध्यात्मिक सुविधा का अधिकार। स्वामीजी की धारणा यह है कि ये चारों प्रकार के शोषण मनुष्य के विकास में सबसे बड़े बाधक तत्व हैं, इसलिए इनका निराकरण होना ही चाहिए। अतः वे कहते हैं—'यदि ऐसा राज्य स्थापित करना संभव हो जिसमें ब्राह्मण काल का ज्ञान, क्षत्रिय काल की सभ्यता, वैश्यकाल का प्रचार भाव और शूद्र काल की समानता रखी जा सके—उनके गुण दोषों को त्याग कर, तो वह आदर्श राज्य होगा।"

५ शिक्षा की आवश्यकता :

भारत की समस्त दुर्दशाओं के मूल में स्वामीजी ने शिक्षा के अभाव को देखा है। उनका कथन है—"यूरोप के बहुतेरे नगरों में मैं घूम-घूम कर वहाँ के गरीबों के भी अमन चैन और विद्या को देखकर हमारे गरीबों की बात याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अन्तर क्यों हुआ? जबाब पाया-शिक्षा! शिक्षा से आत्म-विश्वास आता है और आत्मविश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जाग पड़ता है। किन्तु हमारा ब्रह्मभाव क्रमशः निहित-संकुचित होता जा रहा है।"

स्वामीजी कहा करते थे—"भारतवर्ष में हमलोग गरीबों को, पतितों को क्या समझते हैं? राक्षस जैसा नृशंस समाज उनपर जो लगातार चोटें कर रहा है, उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे हैं, पर वे जानते नहीं कि वे चोटें कहाँ से आ रही हैं? वे भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं।......समाज की यह दशा दूर करनी होगी।" अतः आधुनिक भारत का यदि निर्माण करना है तो हमें स्वामीजी की परिकल्पना के अनुसार भारतवासियों में सही शिक्षा का प्रसार करना होगा, उनमें मनुष्यत्व का भाव भरना होगा, उनके व्यक्तित्व का विकास करना होगा और अन्त में प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित ब्रह्मत्व को, दिव्यता को जाग्रत करना होगा। एक शोषण मुक्त स्वाधीन समाज, दैहिक, मानसिक और आत्मिक क्षुधा से सर्वथा मुक्त समाज और राष्ट्र की ये अनिवार्य शर्तें हैं। इनके अभाव में अभिनव भारत नहीं गढ़ा जा सकता।

स्वामीजी ने हमें बताया कि चरित्र, सेवा, त्याग और प्रेम के द्वारा ही हम भारत का अभ्युत्थान कर सकते हैं। जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से लौटे, तो कई लोगों ने उनसे कहा कि वे भारत की पराधीनता को दूर कर दें, उत्तर देते हुए स्वामीजी ने कहा "ठीक है, मान लो कि मैं कल भारत को स्वतंत्र कर देता हूँ, तो क्या तुम उस स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकोगे? सारे देश में ऐसे लोग कहाँ हैं जो ऐसा कर सकें।" इस प्रकार स्वामीजी ने हमें बता दिया कि जब तक हमारे पास चरित्रवान मनुष्य नहीं होंगे तब तक कुछ न किया जा सकता है, न पाया जा सकता है। आज हमारे देश में जो मूल्यों में गिरावट आयी है, चारों ओर आपाधापी है—लूट-खसोट, हिंसा है उसका कारण यही है कि

हमारे पास चरित्रवान मनुष्य नहीं हैं। तो फिर हमें मनुष्य कैसे मिले ? यह कार्य संसद के कानून बनाने से नहीं हो सकता। केवल धर्म के माध्यम से ही मनुष्य का निर्माण हो सकता है। इसी से स्वामीजी कहते हैं—"भारत के नव-निर्माण के लिए तुम्हें धर्म और कर्म का सहारा लेना ही होगा। धर्म की सहायता के बिना भारत का उत्थान नहीं हो सकता।"

स्वामीजी ने देश के नव-निर्माण के लिए सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा, 'यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें अब पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास जितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हें यथार्थ सेवा करनी होगी। जो पीड़ित है उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबन्ध करो, जो भूखा है उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो, जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके समझाओ।" स्वामीजी का दृढ़ विश्वास था कि भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदय वाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता और मूर्खत्व के अगाध सागर में निरंतर नीचे डूबते जा रहे हैं।"

यह सेवा अहंकार-भाव से नहीं, उपासना के भाव से होनी चाहिए। स्वामीजी की दृष्टि यह है कि जब आप ईश्वर के सर्वातीत पहलू पर ध्यान करते हैं तो यह एक प्रकार की उपासना है और जब आप मानवता की सहायता के लिए बढ़ कर निःस्वार्थ भाव से उसकी सेवा करते हैं, तो वह उपासना का दूसरा प्रकार हो जाता है, क्योंकि जीव वस्तुतः शिव ही है। हम मन्दिरों में जाकर देवता की उपासना पाषाण मूर्ति में करते हैं, उसके लिए हमें प्राण प्रतिष्ठा करनी पड़ती है, जबकि मनुष्य में देवता की प्राण-प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं। वह तो चलता-फिरता मंदिर है और उसमें देवता स्वयं होकर विराजित हो गये हैं। अतः ऐसे पीड़ित और असहाय मनुष्यों की सेवा रूपी उपासना से हमें ईश्वर का ही साक्षात्कार होगा। स्वामी विवेकानन्द इस सेवा मंत्र से इतने उद्भासित हो उठे थे कि वे कह उठे कि—लो, यह मार्ग है।

शायद ही आज की कोई ऐसी समस्या है जिस पर स्वामीजी की तीव्र और पैनी दृष्टि न पड़ी हो और उसका समाधान उन्होंने नहीं प्रस्तुत किया हो। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम उन समाधानों की ओर गहराई से ध्यान दें, उन पर मनन-चिंतन करें और उन पर अमल करें। अगर हमारी शिकायतें बैठे-ठाले का गप हो तो मुझे कुछ नहीं कहना है। अगर हमारी शिकायतों में हमारी आन्तरिक व्यथा है तो हमें स्वामीजी के चरित्र, आदर्श स्वप्न और संदेश को अपने जीवन में उतारना ही होगा—नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

६ धर्म : भारत के जीवन का प्रधान केन्द्र :

वर्त्तमान भारत के अनेक रोगों का एक कारण यह है कि वह अपने मूल केन्द्रों से ही हट गया है। क्या है वह मूल केन्द्र ! स्वामीजी का वचन है—"प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते हैं।

भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वही राष्ट्रीय जीवनरूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वभाविक जीवन-शक्ति को दूर फेंक देने की चेष्टा करे—शताब्दियों से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है उससे मुड़ जाने का प्रयत्न करे—और यदि वह अपने इस कार्य में सफल हो जाए, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। अतएव यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाजनीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवनशक्ति का केन्द्र बनाने मे सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जाएगा। यदि तुम इससे बचना चाहो, तो अपनी जीवन-शक्तिरूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हें अपने सारे कार्य करने होंगे—अपनी प्रत्येक क्रिया का केन्द्र इस धर्म को ही बनाना होगा। तुम्हारे स्नायुओं का प्रत्येक स्पन्दन तुम्हारे इस धर्मरूपी मेरुदण्ड के भीतर से होकर गुजरे।"

यह सच है कि देश आज अनेक कुरीतियों के अंधकार में आ फंसा है। लेकिन बुराइयों का रोना रोने मात्र से ही तो काम नहीं चलने का। हमें अच्छाइयों की ओर जाना ही होगा। स्वामीजी ने बड़े प्रेरक शब्दों में एक मंत्र दिया था—"मैंने भारतवासियों से बारम्बार कहा है और अब भी कह रहा हूँ कि कमरे में यदि सैकड़ों वर्षों से अन्धकार फैला हुआ है तो क्या घोर अन्धकार! भयंकर अन्धकार!! कहकर चिल्लाने से अन्धकार दूर हो जायगा? नहीं, रोशनी जला दो, फिर देखो कि अन्धेरा आप ही दूर हो जाता है या नहीं? मनुष्य के सुधार का, उसके संस्कार का यही रहस्य है। उसके समक्ष उच्चतर बातें, उच्चतर प्रेरणाएँ रखो, पहले मनुष्य में, उसकी मनुष्यता में विश्वास रखो। ...लोगों से यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि तुमलोग जो कुछ कर रहे हो, वह ठीक नहीं है, खराब है। जो कुछ अच्छा है, उसे उनके सामने रख दो, फिर देखो, वे कितने आग्रह के साथ उसे ग्रहण करते हैं।

"तो हमें केवल देश की दुर्दशा और दुरवस्था की चर्चा नहीं करनी है। ऐसा करके हम केवल अपना मनोरंजन करते हैं। मेरी बात पर ध्यान दो। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुममें से प्रत्येक को गुरु गोविंद सिंह बनना पड़ेगा। तुम्हें अपने देशवासियों में भले ही हजारों दोष दिखायी दें, पर तुम उनकी रग-रग में बहने वाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्हें पहले अपने इन स्वजातीय नर-रूप देवताओं की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी बुराई के लिए खास चेष्टा किया करें। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर अभिशाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का प्रयोग करो। यदि ये तुम्हें त्याग दें, पैरों से ठुकरा दें तो तुम उसी वीर केशरी गोविंद सिंह की भांति समाज से दूर जाकर नीरव भाव से मौत की राह देखो। ...हमें अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श रखना होगा। पारस्परिक विरोध-भाव को भूलकर चारों ओर प्रेम का प्रवाह बहाना होगा।"

विदेश से लौटने पर बड़े मार्मिक शब्दों में स्वामीजी ने मद्रास में अपने देशवासियों को निर्देश दिया था—"ऐ मेरे स्वदेशवासियों, मेरे मित्रो, मेरे बच्चो, ...यदि हमारे इस समाज में, इस राष्ट्रीय जीवन-रूपी जहाज में छेद है, तो हम तो उसकी संतान हैं। आओ चलो, उन छेदों को बंद कर दें—उसके लिए हँसते-हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकाल कर उसकी डाट बनायेंगे और जहाज के उन छेदों में भर देंगे। पर उसकी भर्त्सना न करें। इस समाज के विरुद्ध एक कड़ा शब्द तक न निकालो"।...

७ सर्वधर्म समभाव :

यदि हमें भारत का नव निर्माण करना है तो सर्व धर्म समभाव के सिद्धान्त को आन्तरिकता से लागू करना होगा। इस सन्दर्भ में भी स्वामीजी के विचार अनुसरणीय है। भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता, धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धान्त की दुहाई देता है। किन्तु स्वामीजी अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता नहीं, स्वीकृति की शिक्षा देते हैं। सहिष्णुता और स्वीकृति में अन्तर है। हम किसी को उद्दण्डता के प्रति सहिष्णु हो सकते हैं, पर उसे स्वीकार नहीं कर सकते। किन्तु स्वामीजी की धारणा है कि चूंकि एक ही सत्य सभी धर्मों के मूल में है, इसलिए हमें अन्य धर्मों की सत्यता को भी स्वीकार करना चाहिए। वे कहते हैं — I accept all the religions that were in the past, and worship with them all, I worship God with everyone of them, in whatever form they worship Him. I shall go to the Mosque of the Mohammedan; I shall enter the Christian's Church and kneel before the crucifix; I shall enter the Buddhistic temple, where I shall take refuge in Buddha and his law. I shall go into the forest and sit down in meditation with the Hindu who is trying to see the light which enlightens the heart of everyone. स्वामीजी के इस धार्मिक सिद्धांत के मूल में उनके गुरु द्वारा अपने जीवन में प्रदर्शित "यतो मत ततो पथ" का निर्देश ही है। और दिनकर ने लिखा है—"भारतवर्ष की धार्मिक समस्या का जो समाधान रामकृष्ण ने दिया है, उससे बड़ा और अधिक उपयोगी समाधान और कोई हो ही नहीं सकता।" यह एक बड़ा सत्य है। आधुनिक भारत के निर्माण में हमें इस तथ्य को सदैव स्मरण रखना होगा। स्वामीजी ने इस देश के लिए इस्लामी शरीर और वेदान्ती बुद्धि के समन्वय पर जोर दिया था। अर्थात् इस्लाम की समानता के आधार पर हमारे समाज की संरचना हो और हमारे मस्तिष्क में जन-जन के प्रति अद्वैत की अभेद बुद्धि हो, तभी हमारा राष्ट्र सुसंगठित रह सकेगा तथा भावात्मक एकता और अखण्डता की रक्षा हो सकेगी।

८ जाति भेद :

भारत में जातिगत वैषम्य और ऊँच-नीच, अगला-पिछड़ा वर्गों के संघर्ष की समस्या आज जटिल हो गयी है। स्वामीजी का हृदय इस समस्या से द्रवीभूत हो उठा था। वे कहते हैं—"मुझे विशेष दुःख इस बात पर होता है कि वर्तमान समय में भी जातियों के बीच में इतना मतभेद चलता रहता है। इसका अन्त होना चाहिए। यह दोनों ही पक्षों के लिए व्यर्थ है, खासकर ब्राह्मणों के लिए क्योंकि इस तरह के एकाधिकार और विशेष दावों के दिन लद गये। हर एक अभिजात वर्ग का कर्त्तव्य है कि अपने कुलीन तंत्र की कब्र वह आप ही खोदे और जितना शीघ्र इसे कर सके उतना ही अच्छा होगा जितनी वह देर करेगा, उतनी वह सड़ेगी और उसकी मृत्यु भी उतनी ही भयंकर होगी। अतः यह ब्राह्मण जाति का कर्त्तव्य है कि भारत की दूसरी सब जातियों के उद्धार की चेष्टा करें। (विवेकानन्द संचयन : पृ० १०८) एक ओर वे पिछड़े वर्ग के लोगों से कहते हैं—"ऐ पिछड़ी जाति के लोगो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे बचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय संस्कृत पढ़ना है, और यह लड़ना-झगड़ना और उच्च वर्णों के विरोध में लेख लिखना व्यर्थ है। ...जातियों में समता लाने का एकमात्र उपाय उस संस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्गों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको, तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायेगा।" (वही, पृ०

१०४) और दूसरी ओर यह मानते हुए कि प्रकृति में असमानता है, वे सबके लिए समान अवसर के पक्षधर हैं। यदि किसी को अधिक और किसी को कम अवसर देना ही है तो वे कहते है कि निर्बलों को सबल से अधिक अवसर देना उचित है। दूसरे शब्दों में ब्राह्मणों को शिक्षा की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी चाण्डाल को। यदि ब्राह्मणों के लड़के को एक शिक्षक चाहिए तो चाण्डाल के लड़के को दस, क्योंकि स्वामीजी का तर्क यह है कि अधिकतर सहायता उसे मिलनी चाहिए, जिसे प्रकृति ने जन्म से कुशाग्र बुद्धि नहीं दी है।

जाति भेद और असमानता के विष को दूर करने के लिए स्वामीजी ने हमारी ओर लालसा भरी दृष्टि से निहारा था। उनकी इच्छा थो कि हम जैसे "लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के जोश से उद्दीप्त होकर ईश्वर के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर तथा गरीबों और पतितों एवं पद दलितों के प्रति साहनुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस संकीर्ण भारत देश में सर्वत्र उद्धार के संदेश का, समानता के सन्देश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे।" विवेकानन्द के ऐसे ही अग्निदीप्त विचारों और कार्यों से प्रभावित हो डॉ० भीमराव अम्बेदकर ने पं० जवाहरलाल नेहरू के निजी सचिव एन० ओ० मथाई से कहा था—"हाल की शताब्दियों में भारत ने जिस महानतम पुरुष को पैदा किया, वह गांधो नहीं, स्वामी विवेकानन्द थे।"

९ धर्म और विज्ञान :

आधुनिक भारत के निर्माण के लिए धर्म के साथ विज्ञान का सामंजस्य भी आवश्यक है। आज विज्ञान की उपेक्षा कर हम अपनी प्रगति पर कुठाराघात कर बैठेंगे। किन्तु विज्ञान कहीं हमें हृदयहीन, श्रद्धारहित और धर्म-विमुख न बना दे—यह भी आशंका है। भारत में अतीत काल में धर्म और विज्ञान में कोई संघर्ष नहीं था। दोनों सत्य के संधान में निरत थे। यह संघर्ष यूरोप की देन है। हम तो परा और अपरा दोनों विद्याओं के साधक और समर्थक रहे हैं। स्वामीजी दोनों के समन्वय पर जोर देते हैं। वे पश्चिम के भौतिक उत्कर्ष को अपनाना चाहते हैं और पूर्व के आध्यात्मिक उत्कर्ष का भी तिरस्कार नहीं करना चाहते। उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, खेत और क्रीड़ा-भूमि आदि भगवान के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य स्थान हैं जैसे साधु की कुटी या मन्दिर का द्वार। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा पौरुष तथा श्रद्धा सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर नहीं है। ......एक बार उन्होंने कहा था, "कला, विज्ञान एवं धर्म एक ही सत्य की अभिव्यक्ति के विविध माध्यम हैं। लेकिन इसे समझने के लिए निश्चय ही हमें अद्वैत का सिद्धान्त चाहिए।" भारत में धर्म और विज्ञान के समन्वय के लिए श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के अवदान की चर्चा करते हुए अमेरी ड रिनकोर्ट ने अपनी विख्यात पुस्तक "दि आर्ट आफ शिव" में कहा है—

"From its modern awakening with Sri Ramkrishna and Swami Vivekananda Eastern mysticism has begun to adapt its revelutions to the entirely different cultural framework provided by science and technology, without in any way sacrificing what is valid in its traditional understanding of the phenomenon itself. अर्थात् श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के द्वारा उसके (भारत के) आधुनिक जागरण से पूर्वी अध्यात्मवाद के विज्ञान और टेकनोलोजी द्वारा प्रस्तुत किये गये

सर्वथा भिन्न सांस्कृतिक ढांचे के साथ अपने तर्कसंगत पारस्परिक ज्ञान और विवेक में जो तथ्यपूर्ण है, उनको बिना बलि दिये हुए, अपने रहस्योद्‌घाटनों का रूपान्तरण करना शुरू कर दिया है।

१० भारतमाता की आराधना :

नये भारत के निर्माण के लिए स्वामीजी की धारणा यह है कि हमारे भीतर अपने राष्ट्र के प्रति एकान्त अनुराग, अशेष श्रद्धा और अपरिमेय आराधना का भाव जाग्रत हो जाय। वे अग्नि मंत्र देते हुए कहते हैं—"आगामी पचास वर्षों के लिए यह जननी जन्मभूमि ही मानो आराध्य देवी बन जाय। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। ……जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे। (वि० सा० सं० ५, पृ० १६३)।

स्वामीजी की दृष्टि में नियम या संविधान से बड़ा मनुष्य है। कोई देश इस बात से महान नहीं बनता कि उसकी संसद में कैसे-कैसे कानून बनते हैं बल्कि इस बात से कि उसके पास मनुष्य कैसे हैं। क्योंकि मनुष्य नियमों को बनाता है, नियम मनुष्य को नहीं बनाते। मनुष्य रुपया पैदा करता है, रुपया मनुष्य को पैदा नहीं करता। मनुष्य कीर्ति और नाम पैदा करता है, कीर्ति और नाम मनुष्य नहीं पैदा करते। अतः वे कहते हैं—"मेरे मित्रों पहले मनुष्य बनिए, तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीजें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी। केवल मनुष्यों की आवश्यकता है और सब कुछ स्वयं हो जायेगा।" स्वामीजी चाहते हैं कि धनी और शिक्षित लोग कोटि-कोटि लोगों के अभ्युत्थान में प्राण-प्रण से लग जाएँ। "जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे तब तक मैं प्रत्येक उस आदमी को विश्वासघातक समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता।"

आधुनिक भारत के निर्माण के लिए लोगों को हृदयवान होना ही होगा। वे वज्र घोष करते हुए कहते हैं—मेरे भावी संस्कारको, मेरे भावी देश भक्तो, तुम हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तान पशु तुल्य हो गयी हैं? क्या तुम कभी इससे अनिद्रित हुए हो? यदि हो तो जानो कि तुमने स्वदेश भक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की—पहले कूर्म अवतार की पूजा करनी चाहिए। पेट की चिन्ता से भारत बेचैन है। ……पहले रोटी और तब धर्म चाहिए।

और इस अभिनव भारत के निर्माण के लिए स्वामीजी ने युवकों का आह्वान किया। चरित्रवान् युवकों का। उनका विचार था कि "भारत को कम से कम अपने सहस्र मनुष्यों की बलि की आवश्यकता है, पर ध्यान दो—"मनुष्यों" की "पशुओं" की नहीं। ……भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदय वाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर उन भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के सागर में निरन्तर डूबते जा रहे हैं।

भारत के नव निर्माण के लिए स्वामीजी को देश के युवकों से बड़ी अपेक्षाएं थीं। उन्होंने कहा था—"मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के युवकों पर है। उन्हीं से मैं अपने कार्यकर्त्ताओं का संग्रह करूँगा। वे सिंह विक्रम से देश की यथार्थ उन्नति सम्बन्धी सारी समस्या का समाधान करेंगे"।

नवयुवकों से उन्होंने कहा था—"ऐ वीर, साहस का अवलम्बन करो, गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं। ......भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियां—मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरी जवानी की फुलवारी और मेरे बुढ़ापे की काशी है।" और एक नये भारत की कल्पना करते हुए स्वामीजी ने कहा था—"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़ कर, किसानों को कुटी भेदकर, मछुआ, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से बाजार से। निकले झोपड़ियों, जंगलों, पहाड़ों-पर्वतों से। ......"

स्वामी विवेकानन्दजी ने हमें सिखाया है कि भारत का नव निर्माण हम भारत के प्रति अगाध प्रेम रखकर ही कर सकते हैं। जिस किसी ने स्वामीजी के अग्नि वचनों को छुआ उसी में राष्ट्रीयता की लहर आयी है। इसी से महात्मा गांधी ने कहा था—मैंने स्वामीजी के ग्रन्थ बड़े ही मनोयोग के साथ पढ़े हैं और इसके फलस्वरूप देश के प्रति मेरा प्रेम हजारों गुना बढ़ गया है।" पं० जवाहरलाल नेहरू का कथन है—"मुझे पता नहीं कि आज की युवा पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के लेख और व्याख्यान पढ़ते हैं, पर मेरी पीढ़ी के अनेक युवक उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और मेरा विचार है कि वर्तमान पीढ़ी भी यदि स्वामीजी के व्याख्यान और उनकी रचनाओं का अनुशीलन करे तो उसका बड़ा ही कल्याण होगा।" नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने स्वीकार किया है कि "स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। ···स्वामीजी ने सुस्पष्ट रूप से राजनीति का एक भी संदेश नहीं दिया, किन्तु जो भी उनकी रचनाओं के सम्पर्क में आया, उसमें देशभक्ति और राजनीतिक मानसिकता आपसे आप उत्पन्न हो गयी। "वस्तुतः "अभिनव भारत को जो कुछ कहना था वह विवेकानन्द के मुख से उद्गीर्ण हुआ। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द ने दिया। विवेकानन्द वह सेतु हैं जिस पर प्राचीन और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं। विवेकानन्द वह समुद्र हैं, जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता तथा उपनिषद् और विज्ञान, सबके सब समाहित होते हैं।"

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत के नवनिर्माण के लिए स्वामीजी के अग्नि अभिषिक्त इस मंत्र को भारतवासी सदैव याद रखेंगे—"उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो" स्वामीजी से मेरी प्रार्थना है कि वे हममें त्याग, सेवा एवं प्रेम का भाव भरकर देश के नवनिर्माण की प्रेरणा दें।

"क्या भारत मर जायेगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल लोप हो जायेगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का नाश हो जायेगा, धर्मों के प्रति सारी मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायेगी······और उसके स्थान पर कामरूपी देव व विलासियारूपी देवी राज्य करेंगी; धन पुरोहित होगा, प्रतारणा, पाशविक लाभ और प्रतिद्वन्द्विता ये ही पूजा पद्धति होंगी और मानवात्मा बलि सामग्री होगी"

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द के प्रति

डॉ० वीणा कर्ण
पटना

अन्तर्मन में जलता तेरे
शुभ चिन्तन का निर्मल प्रकाश
अवगुण्ठित मन को खोल, किया
मानवता का उज्ज्वल विकास
थे रामकृष्ण के मंत्रपुत्र
भारत माँ के हरकारे थे
तुम भारत पुत्र दुलारे थे।

शापित इस जगती की पीड़ा
का दंश तुम्हें मूर्छित करता
आँसू की स्याही, शब्द बना
निर्झरिणी-सा सुरभित करता
कल्याणमयी वाणी के तुम
परिभाषित स्नेह सितारे थे
तुम भारतपुत्र दुलारे थे।

हे विश्व बन्धु ! तुमने देखा
जग में विष फैला महा विषम
तुम थे विवेक की ज्योति-शिखा
ले आये हममें शुभ संयम
संस्कार सुरभि के उन्मीलित
प्राणों के एक सहारे थे।
तुम भारतपुत्र दुलारे थे।

जीवन तेरा वरदान बना
कर्मठता का पाकर दुलार
सम्बल प्रतिकार शक्ति पाकर
निःशेषित जग का व्यथाभार
सारदा पुत्र थे वरदहस्त
माँ के प्राणों के प्यारे थे।
तुम भारतपुत्र दुलारे थे।

आनन्द सुधा रस बरसाया
जिससे जगती को मिला त्राण
पाथेय श्रेय उद्गम अविरल
निर्वसन हुआ कालुष्य प्राण
तुम घनीभूत भारत, जग के
दुखियों के दृग के तारे थे।
तुम भारत पुत्र दुलारे थे।

सद्गुरु चरणों में शंका समाधान

स्वामी शशांकानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मिशन
समाज सेवक शिक्षण मन्दिर
बेलुड़ मठ, हावड़ा।

सद्गुरु के उपस्थित होने पर, उनके भीतर निहित सद्लक्षणों की पुष्टि होने पर तब सद्गुरु के पास शिष्य ज्ञानोपदेश की इच्छा से उपस्थित होता है। सद्गुरु शिष्य के अज्ञान का हरण करते हैं, उसे इष्ट-देवता की अनुभूति का मार्ग बता देते हैं और इष्ट-देवता की दिव्य लीलाओं का तत्त्व से वर्णन करते हैं।

अब हम विचार करेंगे कि एक शिष्य गुरु के पास किस विधि से उपस्थित हो, गुरु किस प्रकार प्रसन्न होंगे, प्रसन्न होकर किस प्रकार शिष्य की शंकाओं को मिटा कर उसका अज्ञान हरण करते हैं और किस प्रकार शिष्य को साधना पथ पर ले जाते हैं।

सद्गुरु के पास किस विधि से जाएं

योग्य गुरु का अनुसंधान पाकर अधिकारी शिष्य ज्ञान की पिपासा लेकर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरु के पास किस विधि से उपस्थित हो यह विशेष जानने की बात है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम यह कह सकते हैं कि शिष्य किस विधि से गुरु के पास पहुंचे कि गुरु प्रसन्न होकर अपनी सम्पूर्ण कृपा उस पर बरसा दें और समस्त ज्ञान राशि शिष्य में भर दें। सुयोग्य पात्र हो और फिर विधिवत् उपस्थित हो तो गुरु का भी ज्ञान-प्रवाह अबाध गति से शिष्य की ओर प्रवाहित होने लगता है।

छान्दोग्योपनिषद् में श्रुति यह बात दिखलाती है कि गुरुजनों के प्रति विनय पूर्वक जाना चाहिए, तथा यह भी प्रदर्शित करती है कि विद्या त्रिलोकी के राज्य से भी बढ़कर है, क्योंकि देवराज इन्द्र और असुर राज में दोनों परस्पर असंविदान—संविद (सद्भाव) अर्थात् विद्या के फल के लिए एक दूसरे से ईर्ष्या करते हुए समित्पाणि—हाथों में समिधाओं के भार लिए प्रजापति के समीप आये और बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यवास किया (छा० उ० ८/७/२ पर शंकर भाष्य)

इसी प्रकार सम्पूर्ण विज्ञानरूप साधनों से सम्पन्न नारदजी उत्तम कुल, विद्या, आचार और नाना प्रकार के सामर्थ्य रूप सम्पत्ति से होने वाले अभिमान को त्याग कर श्रेय साधन की प्राप्ति के लिए एक साधारण पुरुष के समान सनत्कुमारजी के समीप गये और कहा "ॐ अधोहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः" (छा० उ० ७/१/१)

उपनिषदों में गुरु के पास विधिवत् जाकर प्रश्न करने की प्रथा सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में देखी जाती है, "शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्न पप्रच्छ।" अर्थात् शौनक नामक प्रसिद्ध महागृहस्थ ने अङ्गिरा के पास विधिपूर्वक जाकर पूछा। अर्थात् यह प्रथा उससे पहले भी थी। गुरु के पास जाने की विधि क्या है? इस का वर्णन भी हमें मुण्डकोपनिषद में ही

मिलेगा। जिस जीव ने संसार की असारता को समझ कर संन्यास की निष्ठा बना ली हो तो उसके लिए आदेश है।

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

अर्थात् कर्म द्वारा प्राप्त हुए लोकों की परीक्षा कर ब्राह्मण निर्वेद को प्राप्त हो जाए क्योंकि संसार में नित्य पदार्थ नहीं है और अनित्य से हमें क्या प्रयोजन है? अतः उस नित्य वस्तु का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने के लिए हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ही पास जाना चाहिए। वहाँ पहुंचकर शिष्य गुरु को प्रणाम करे।

अब गुरु के समक्ष उपस्थित होकर सबसे पहले दण्डायमान होकर उन्हें प्रणाम करना चाहिए और फिर प्रश्न करना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं, 'तद्विद्धि' अर्थात् शिष्य को यह ज्ञान होने पर कि 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिहविद्यते' (अर्थात् ज्ञान के सदृश पवित्र करने वाली और कोई वस्तु नहीं है),

"प्रणिपातेन"—गुरु के समक्ष दण्डायमान होकर

"परिप्रश्नेन"—प्रश्न के द्वारा

'सेवया'—उपदेश का सेवन करते हुए ज्ञान लाभ करना चाहिए।

यदि गुरुदेव ही कृपा कर उपस्थित हो जाएँ तो भी उन्हें उठकर प्रणाम करके चरणों में गिरकर ज्ञान की याचना करनी चाहिए।

राजा जनक जैसे आचार्यों के जीवन में भी देखा जाता है कि याज्ञवल्क्यजी के उपस्थित होने पर

"जनको हवैदेह: कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच।
नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्यानु मा शाधीति॥"

(बृ० उ० ४/२/१)

—जनक अपने आचार्यत्व को छोड़कर कूर्च आसन से उठकर याज्ञवल्क्य के चरणों में गिर पड़ा और नमस्कार करके कहा, 'अनु मा शाधि' अर्थात् मेरा अनुशासन कीजिए।

गुरु को प्रणाम करके अपनी जिज्ञासा उनके समक्ष रखनी चाहिए। मुण्डकोपनिषद् में शौनकजी ने आङ्गिरस से पूछा, 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति॥''—'हे भगवन्। किसके जान लिये जाने पर सब कुछ जान लिया जाता है।

भक्ति मार्ग के साधकों में भी भगवद्-प्रसङ्ग सुनने के लिए वक्ता के सामने उन्हें विधिवत प्रणाम करके बैठने और अन्य बातों को छोड़कर एकाग्र मन से श्री भगवान की लीलाओं—कथाओं को नम्र और हाथ जोड़कर सुनने की विधि है। जो कुछ सुने उसका बराबर चिन्तन करने, समझ में न आने पर प्रश्न करने आदि की विधि है।

अब देखा जाए कि राम चरित मानस में गुरु के पास विधिवत् जाकर प्रश्न करने की क्या प्रथा है। इस पवित्र ग्रन्थ में मुख्यतः भगवान् राम की दिव्य लीला को तत्व से जानने के लिए ही शिष्य गुरु के समीप उपस्थित होते हैं।

(१) भरद्वाज मुनि का मुनि याज्ञवल्क्यजी के पास जाना

एक बार प्रयागराज में मकर स्नान में आये हु मुनिगणों के लौट जाने पर भरद्वाजजी ने याज्ञवल्क्यजी के चरण पकड़ कर उन्हें अपने आश्रम में रख लिया।

सादर चरन सरोज पखारे।
अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी।
बोले अति पुनीत मृदु बानी॥

—भरद्वाजजी ने आदरपूर्वक याज्ञवल्क्यजी के चरण धोये और बड़े ही पवित्र आसन पर बैठाया। पूजा करके उनके सुयश का वर्णन किया और फिर अत्यन्त कोमल वाणी से प्रश्न किया।

नाथ एक संशय बड़ मोरें।
करगत बेदतत्त्व सबु तोरें॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा।
जौं न कहउँ बड़ होई अकाजा॥

—हे नाथ! मेरे मन में बड़ा सन्देह है; वेदों का तत्त्व सब आपकी मुट्ठी में है (अर्थात् आप वेदों के मर्मज्ञ हैं और मेरी शंका का समाधान करने में समर्थ हैं।) परन्तु उस सन्देह को आपके समक्ष रखने में मुझे भय और लाज लग रही है। भय तो इसलिए लग रहा है कहीं आप यह न समझें की मैं आपकी परीक्षा ले रहा हूं, लाज इसलिए कि इतनी आयु होने पर भी मुझे ज्ञान नहीं हुआ। और यदि प्रश्न नहीं करता हूँ तो मेरी बड़ी हानि होगी—मैं सदा के लिए अज्ञानी ही बना रहूँगा।

संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर गुर सन किएँ दुराव॥

—हे प्रभो! संत लोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता।

अस विचारि प्रगटउँ निज मोहू।
हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥

यही सोचकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ! सेवक पर कृपा करके इस अज्ञान को हर लीजिए।

(२) पार्वती जी का शिवजी के पास जाकर प्रश्न करना

दूसरे प्रसङ्ग में हम देखते हैं कि जगज्जननी पार्वती जी भी ज्ञान प्राप्ति हेतु भगवान शंकर के पास विधिवत् प्रश्न करती हैं। पहले तो वे भगवान शंकर को प्रणाम करती हैं।

बंदउँ पद धरि धरनि सिरु विनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥

—मैं पृथ्वी पर सिर टेक कर आपके चरणों की वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ कि आप वेदों के सिद्धांत को निचोड़ कर श्रीरघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन कीजिए।

पार्वतीजी ने कहा कि हे प्रभो! संत लोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते। "अति आरति पूछउँ सुरराया।" अर्थात् 'मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ।'

प्रभु समरथ सर्बग्य शिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान वैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम॥

हे प्रभो! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याण स्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के निधान हैं, और योग, ज्ञान तथा वैराग्य के भण्डार हैं। आपका नाम शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष है।

इस प्रकार भगवान शिव को प्रणाम कर बड़ी दीनता के साथ उनकी स्तुति गान कर वे प्रश्न करती हैं,

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी।
जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना।
कहि रघुनाथ कथा विधि नाना॥

हे सुख की राशि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी जानते हैं, तो हे प्रभो! आप श्री रघुनाथजी की नाना प्रकार की कथा कह कर मेरा अज्ञान दूर कीजिए।

(३) काकभुशुण्डिजी के पास गरुड़जी का जाना—

उपर्युक्त दो प्रसङ्गों से इस प्रसङ्ग में क्रम उल्टा हो जाता है। यद्यपि गरुड़जी बड़ी ही विनय और दीनता से ही उनके पास गये किन्तु फिर भी क्रम में हम देखते हैं कि उपर्युक्त प्रसङ्गों में भरद्वाज मुनि और पार्वती जी ने क्रमशः याज्ञवल्क्यजी और भगवान शंकर को प्रणामादि किये और प्रश्न किया किन्तु यहाँ तो भुशुण्डिजी ही पक्षिराज का स्वागत करते हैं।

आवत देखि सकल खगराजा।
हरषेउ बायस सहित समाजा॥

अति आदर खगपति कर कीन्हा।
स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥
करि पूजा समेत अनुरागा।
मधुर वचन तब बोलेउ कागा॥

'—पक्षियों के राजा गरुड़जी को आते देख काक भुशुण्डिजी सहित सारा पक्षिसमाज हर्षित हुआ। उन्होंने पक्षिराज गरुड़जी का बहुत ही आदर सत्कार किया और कुशल पूछकर बैठने के लिए सुन्दर आसन दिया। फिर प्रेम, सहित पूजा करके काक भुशुण्डिजी मधुर वचन बोले—

नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज॥

—'हे नाथ! पक्षिराज! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। आप जो आज्ञा दें मैं अब वही करूँ। हे प्रभो! आप किस कार्य के लिए आये हैं?'

नरेन्द्र नाथ (स्वामी विवेकानन्द) और श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के जीवन में भी क्रम इसी प्रकार का रहा। श्रीरामकृष्ण देव नरेन्द्र नाथ के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और देवता की तरह उनके प्रति सम्मान दिखाते हुए कहने लगे, "मैं जानता हूँ प्रभु, आप वही पुरातन ऋषि - नररूपी नारायण हैं, जीवों की दुर्गति दूर करने के लिए आप पुनः संसार में अवतीर्ण हुए हैं। इत्यादि।" थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण कमरे से मक्खन मिश्री और मिठाई लाकर बड़े आदर से अपने हाथ से नरेन्द्र नाथ को खिलाने लगे।

गरुड़जी और नरेन्द्र नाथ दोनों की जीवन घटना में गुरु के पास जाने की विधि में कुछ हेर फेर सम्भवतः इसलिए हुआ कि गुरु ने अपने शिष्य में एक बहुत बड़ा आधार पाया था।

गरुड़जी तो स्वयं भगवान् श्रीहरि के वाहन थे। गोस्वामी तुलसीदासजी उनके सम्बन्ध में भगवान् शंकर के शब्दों में कहते हैं,

"ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवन पति कर जान।"

अर्थात् वे तो ज्ञानियों और भक्तों में शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवन पति भगवान् श्रीहरि के वाहन हैं।

इधर नरेन्द्र नाथ में श्रीरामकृष्ण पवित्रता और सत्य का इतना बड़ा आधार देखकर अवाक् हो गये थे। वे कहते हैं,

"नरेन्द्र सा बुद्धिमान लड़का मैंने बहुत कम देखा है। ...मुझे मालूम न था कि कलकत्ता जैसे स्थान में भी पवित्रता और सत्य का इतना बड़ा आधार हो सकता है। ... मैंने देखा, अपने शरीर का कुछ उसे ध्यान ही नहीं है, बाहर के किसी पदार्थ पर भी साधारण मनुष्यों की तरह कुछ मोह नहीं है। सभी कुछ निराला है। आँखों से प्रतीत होता है मानो किसी ने उसके मन को बरबस ही अंतर्मुखी कर रखा है।"

इसीलिए श्रीरामकृष्ण और भुशुण्डिजी ने अपने शिष्यों के बड़े आधार को देख उन्हें अपने स्नेह से रंजित किया था।

भुशुण्डिजी के यह पूछने पर कि आप किस कार्य से आये हैं गरुड़जी ने बड़े ही कोमल वचन कहे,

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस॥

"हे प्रभो। आप तो सदा ही कृतार्थ रूप हैं, जिनकी बड़ाई स्वयं महादेव जी ने आदर पूर्वक अपने श्रीमुख से अनेक की है।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ।
सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥
देखि परम पावन तव आश्रम।
गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

—'हे तात! सुनिए, मैं जिस कारण से आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही पूरा हो गया। आपका परम पवित्र आश्रम देख कर ही मेरा मोह, सन्देह और प्रकार के भ्रम जाते रहे।

अब श्रीराम कथा अति पावनि।
सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥

सादर तात सुनावहु मोही।
बार-बार बिनवउँ प्रभु तोही।

'अब हे तात्। आप मुझे श्रीरामजी की अत्यन्त पवित्र करने वाली, सदा सुख देने वाली और दुःख समूह का नाश करने वाली कथा आदर सहित सुनाइए। हे प्रभो ! मैं बार-बार आपसे यही विनती करता हूँ।'

रामचरितमानस में हम जिन चार प्रसङ्गों को पाते हैं उनमें तीन प्रसङ्गों की हमने चर्चा की। चौथे प्रसङ्ग में तो वक्ता रूप में गोस्वामी जी स्वयं ही हैं। जो भी विधिवत् श्रीराम गाथा सुनेगा वही कृतकृत्य हो जाएगा।

सद्गुरु द्वारा शिष्य की शंका समाधान

उपर्युक्त प्रसङ्ग में विधिवत उपस्थित हुए शिष्य की भक्ति और निष्ठा देखकर तथा शिष्य में प्रबल जिज्ञासा देखकर यह निश्चित होकर कि शिष्य वास्तव में ही ईश्वर तत्त्व जानना जाहता है गुरु आनन्द में विभोर हो जाते हैं। तभी आध्यात्म तत्त्व गुरु के हृदय में पूर्ण रूपेण उंभर कर शिष्य की ओर प्रवाहित हो उठता है। तभी 'उपदेक्षन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' तब वे तत्वदर्शी गुरु उपदेश करते हैं। जरा अवलोकन कीजिए गरुड़जी को उपस्थित देख काक भुपुण्डीजी की क्या दशा हुई।

सुनि विहंगपति बानी सहित बिपय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल मन हरखेउ अति काम ॥

'—पक्षिराज गरुड़ की विनय और प्रेम युक्त वाणी सुनकर काक भुपुण्डिजी का शरीर पुलकित हो गया, उनके नेत्रों में जल भर आया और वे मन में अत्यंत हर्पित हुए।'

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रावस ॥

'—हे उमा ! सुन्दर बुद्धिवाले, सुशील, पवित्र कथा के प्रेमी और हरिजन के सेवक श्रोता को पाकर सज्जन अत्यन्त गोपनीय रहस्य को भी प्रकट कर देते हैं।

तव भुपुण्डिजी ने गरुड़जी के प्रति राम रहस्य खोल दिये। उन्होंने भगवान की लीला को तत्व से बखाना जिससे उनका सन्देह निवारण हो। उन्होंने कहा—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥
जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोई।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ ॥

'—भगवान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने भक्तों के लिए राजा का शरीर धारण किया और साधारण मनुष्यों के से अनेक परम पावन चरित किये। जैसे कोई नट अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है और वही-वही (जैसा वेष होता है, उसी के अनुकूल) भाव दिखलाता है, पर स्वयं उसमें से कोई हो नहीं जाता ॥ इत्यादि'

इसी प्रकार भवानी जगदम्बा के सरल प्रश्न सुन भगवान शंकर भी राम रस में डूब गये और फिर पार्वतीजी के प्रश्नों का उत्तर देने लगे।

हर हियँ रामचरित सब आए।
प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा।
परमानंद अमित सुख पावा ॥

मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरपित बरनै लीन्ह ॥

'—पार्वतीजी के सरल भक्तिपूर्ण प्रश्न सुनकर शिवजी के हृदय में सारे रामचरित्र आ गए। प्रेम के मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जलभर आया। श्री रघुनाथजी का रूप उनके हृदय में आ गया जिससे स्वयं परमानन्द स्वरूप शिवजी ने भी अपार सुख पाया। शिवजी दो घड़ी तक ध्यान के रस में डूबे रहे; फिर उन्होंने मन को बाहर खींचा और प्रसन्न होकर श्री रघुनाथजी का चरित वर्णन करने लगे।' और उन्होंने पार्वती जी को बहुत प्रकार से ज्ञान देते हुए और उनके मन का संशय दूर करते हुए कहा,

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ ॥

'—जो (पुराण) पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भण्डार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जीव माया और जगत के स्वामी हैं,

वे ही रघुकुल मणि श्री रामचन्द्रजी मेरे स्वामी है, ऐसा कह कर शिव जी ने मस्तक नवाया।

गुरु कृपा का फल

इस प्रकार बहुकाल सत्सङ्ग करने पर शिष्य के संदेह दूर हो जाते है, वह कृतकृत्य हो जाता है। और गुरु का ऋण चुकाने के लिए वह अपने को असमर्थ पाता है।

गरुड़ जी कहते हैं—

जीवन जन्म सुफल मम भयऊ।
तव प्रसाद संसय सब गयऊ॥

रामकृपा तव दरसन भयऊ।
तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥

पार्वती जी भगवान शंकर से कहती है।

मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥

हिन्दी में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का उद्‌भव

स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म० प्र०)

[प्रस्तुत निबन्ध स्वामी विदेहात्मानन्द जी की गहन शोधपरक दृष्टि को उजागर करता है जिसे प्रकाशित करते हुए हमें अतीव प्रसन्नता हो रही है।—सं०]

१८९३ ई० में स्वामी विवेकानन्द अमेरिका गये और वहां शिकागो में आयोजित विश्व-धर्म महासभा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व कर उन्होंने महान सफलता अर्जित की। तत्पश्चात् कई वर्ष तक वे अमेरिका और यूरोप का भ्रमण करते हुए वहाँ युगोपयोगी धर्म का प्रचार तथा भारतीय जन जीवन के बारे में फैली भ्रान्त धारणाओं को दूर करते रहे। भारतवासियों को भी उन्होंने प्राचीन अन्ध विश्वासों का त्यागकर युक्तिसंगत वेदान्त को अपने धर्म का आधार बनाने का अह्वान किया। उनके अभिनव सन्देश की सर्वत्र मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। इस विषय में अमेरिका तथा भारत के अंग्रेजी में निकलने वाले समकालीन समाचार-पत्रों में काफी शोध कार्य हुआ है। परन्तु हिन्दी की उस काल की पत्र-पत्रिकाएँ अति अल्प परिणाम में ही उपलब्ध हैं और उनमें भी शोध करने की आवश्यकता है। ऐसे भी काफी तथ्य मिले हैं जो द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य पर 'श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा' का गहन प्रभाव दर्शाते हैं। प्रस्तुत लेख में हम इस 'भावधारा' के हिन्दी में प्रकाशित प्रारम्भिक साहित्य का कुछ विवरण प्रस्तुत करेंगे; विशेषकर स्वामी विवेकानन्द के जीवनकाल में ही इस दिशा में जो कार्य हुआ था, उसी पर चर्चा करेंगे।

स्वामी विवेकानन्द की जीवनी में हम पाते हैं कि जब वे अपनी प्रथम विदेश यात्रा से लौटने के बाद ११ मई, १८९७ ई० को अल्मोड़ा पहुँचे तो वहाँ एक विशाल मण्डप में लगभग पाँच हजार लोगों ने एकत्र होकर उनका स्वागत किया। सभा में सर्वप्रथम पण्डित ज्वाला दत्त जोशी ने स्वागत समिति की ओर से हिन्दी में एक अभिनन्दन पत्र पढ़ा। इन्हीं पण्डित ज्वालादत्त जोशी को 'श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य' की प्रथम पुस्तिका के लेखन का श्रेय जाता है। १८९८ ई० में इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस से प्रकाशित इस पुस्तिका का नाम है 'दृष्टान्त समुच्चय अर्थात् श्रीमान् परमहंस रामकृष्णजी के भक्ति ज्ञान वैराग्य सम्बन्धी दृष्टान्त'। पुस्तिका के मुखपृष्ठ पर यह सूचना भी है कि इसे 'प्रयाग हाइकोर्ट के वकील पण्डित ज्वालादत्त जोशी ने इकट्‌ठा करके सरल हिन्दी में लिखा।'

४+२+३३ पृष्ठों में श्रीरामकृष्ण की ३८ कथाओं एवं दृष्टान्तों को प्रस्तुत करने वाली इस पुस्तिका का प्रथम पृष्ठ इस प्रकार है—

"श्री श्रीरामकृष्णोजयति
श्री स्वामी अभेदानन्द श्रीस्वामी निर्मलानन्द
श्री स्वामी सदानन्द चरणेषु
समर्पितमिदम्

"प्रायः तीन वर्ष हुये कि आप के सत्संग से मुझको यह लाभ विशेष हुआ कि मैंने पूज्यपाद श्री गुरु महाराज की उक्तियां आप के पास बैठ के सुनीं और उन का सूचीपत्र भी बनाया। पीछे आपकी ऐसी कृपा हुई कि आप अपना अंग्रेजी लेख जिस में वे सब उक्तियां हैं मुझ ही को दे गये। उस में जितने दृष्टान्त हैं उन को मैंने चुन-चुन कर एकट्ठा किया और शक्ति अनुसार हिन्दी में लिखा। यह वही पुस्तक है।

आप का कृपाकांक्षी
ज्वाला दत्त जोशी"

तदुपरांत फाल्गुन शुक्ल द्वितीया संवत् १९५४ को इसकी भूमिका में लिखते हैं—"प्राचीन काल में जितने बड़े-बड़े ऋषि हुए हैं उन्होंने दृष्टान्त द्वारा लोगों को उपदेश किया। इसी प्रकार श्रीपरमहंस रामकृष्णजी ने भी अपने शिष्यों को अनेक बातें दृष्टान्त द्वारा सिखायी क्योंकि इस रीति से जो कुछ सिखाया जाता है वह एक तो जल्दी समझ में आ जाता है दूसरे बहुत काल तक स्मरण रहता है। उक्त परमहंसजी के इस पुस्तक में मैंने वे ही दृष्टान्त रक्खे हैं जो मुझ को लोगों के लिए अधिक उपयोगी जान पड़े। आशा है कि सज्जन लोग जहां कहीं भूल हो गयी हो उसे शुद्ध कर मुझे कृतार्थ करेंगे।"

इस भावधारा की द्वितीय पुस्तिका १८९८ ई० के ही अन्त में मध्य प्रदेश से प्रकाशित हुई। ४+४+४६ पृष्ठों की इस पुस्तिका का भीतरी आवरण पृष्ठ बड़ी उपयोगी सूचनाएं प्रदान करता है, जो निम्नलिखित है—

आलकाट छापाखाने की धर्म ग्रन्थमाला

अंक—१

हिन्दू धर्म पर निबन्ध

जो

श्रीमद् स्वामी विवेकानन्द ने
अमेरिका के संयुक्त संस्थानान्तर्गत शिकागो नगर के
"जगद्धर्म प्रतिनिधि सभा" में पढ़ा था
उसका
नारायण बालकृष्ण नाखरे (आत्रेय) ने
हिन्दी अनुवाद
करके
सागर म० प्र० में
अपने आलकाट छापाखाने में छाप के प्रकाशित किया
सन १८९८ ई०

पहली बार — कीमत २ आने
१००० प्रति। — डाक महसूल ६ पाई

२७ सितम्बर १८९८ को इस पुस्तिका की 'भूमिका' अनुवादकर्ता ने इस प्रकार लिखी है—

"प्रिय पाठक,

आपको स्मरण होगा कि ईस्वी सन १८९३ के सितम्बर महीने में अमेरिका के संयुक्त संस्थानान्तर्गत शिकागो नगर में 'वर्ल्ड्‌स पार्लमेंट आव रिलीजन्स' अर्थात् 'जगत् की धर्म प्रतिनिधि सभा' नाम की एक महासभा हुई थी। इस सभा में पृथ्वी भरके सम्पूर्ण विद्यमान धर्मों के सदृश हमारा यह अत्यन्त पुरातन हिन्दू धर्म भी प्रतिनिधि द्वारा उपस्थित था। करुणानिधि भगवानकी दया से और हमारे परम प्रिय व परम पूज्य धर्म के सुदैव से इस समय उसके प्रतिनिधि का कार्य करने के अर्थ उसी के संतान में से एक ऐसा सुपुत्र मिल गया कि जिसने अपने असाधारण बुद्धि, तप, विद्या, वक्तृत्व, विनय और सच्छीलता आदि सद्गुणों के बल से हिन्दु धर्म पर उसके शत्रुओं ने आजतक जितने भर दोष की राशि लाद रखी थी उसको लीला मात्र से दूर करके उसकी यथार्थ महती सब जग में प्रकट की और उसकी

श्रेष्ठता सबों से मान्य करायी। जिस दैवशाली जननी ने ऐसे नरपुंगवको नौ मास तक अपने गर्भ में धारण किया वह धन्य है।

"इस सत्पुरुष का नाम श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द है। बंगाल के आधुनिक साधु शिरोमणि ब्रह्मलोकवासी श्रीमत् परमहंस रामकृष्ण देव के वे सच्छिष्य हैं।

उक्त सभा में हमारे धर्म के सन्मान्य प्रतिनिधि ने अपनी वक्तृतानिपुण रस भरी वाणी से हिन्दू धर्म का जो निरूपण किया वह इतना सर्वमान्य हुआ कि उसको सुनते ही समस्त श्रोतृ समाज चित्रलिखित-सा आश्चर्य-चकित और आनन्द में तल्लीन हो गया। जहां देखो वहीं से "साधु" "साधु" शब्द की ध्वनि कर्णगोचर होने लगी। और स्वामीजी का प्रेम से अभिनन्दन होने लगा। अस्तु।

"इस अति मनोहर व्याख्यान को पढ़ने से प्रत्येक हिंदू को समाधान और आनन्द होगा ऐसा सोचकर अंग्रेजी भाषा न जानने वाले स्वधर्मी व स्वदेशी जनों के हितार्थ इस व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद करने की मेरे मन में जो इच्छा उपजी उसका फल इस पुस्तक के रूप में मैं आज आपकी सेवा में परम आदर से व अत्यन्त नम्रता पूर्वक अर्पण करता हूं। आशा है कि आप अपने सहज स्वभावानुसार मुझ पर अनुग्रह करके उसका स्वीकार करेंगे।

"इस अनुवाद की भाषा जहां तक हो सकी सुगम व सरल करने का यत्न किया है। तौभी मूल व्याख्यान में वहुतेरे पद और वाक्य ऐसे आये हैं कि उनका पूरा-पूरा भाव सामान्य जनों के नित्य व्यवहार में आने वाले शब्दों के द्वारा हिन्दी भाषा में व्यक्त कर दिखाना, मेरी अल्प मति के अनुसार, केवल असंभव है। अत: ऐसे स्थलों में उपायहीन होकर कठिन संस्कृत शब्दों का मुझे कहीं कहीं उपयोग करना पड़ा। कारण अनुवाद की भाषा बालवोध करने की अपेक्षा उनमें मूल लेख का पूरा मर्म लाने का यत्न करना अनुवाद कर्ता का पहिला कर्तव्य है। और किसी भी लेखक की भाषा उसके विषयानुरूप ही रहना योग्य है। अस्तु।

"मेरी अल्पज्ञता के कारण इस अनुवाद में रही हुई न्यूनता का दोष जो सज्जन कृपा करके मुझे बतावेंगे उनका मैं सदा के लिए ऋणी बना रहूंगा।

"स्वामीजी ने हिन्दू धर्म प्रति पादक अपने मनोहर व्याख्यानों का हिन्दी में अनुवाद करने का अत्यन्त उदार भाव से मुझे अधिकार दिया इसके विषय में मैं उनको अनेकानेक धन्यवाद देता हूं। इत्यलम्।"

स्वामीजी की अनुमति लेकर प्रकाशित इस पुस्तिका में उनके तीन व्याख्यान हैं—(१) स्वागत का स्वीकार (२) हिन्दू धर्म पर निबन्ध और (३) अंतिम अधिवेशन में भाषण। इसके अतिरिक्त नाखरेजी ने हिन्दू धर्म के प्रचारार्थ 'प्रभात' नामक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की थी। यद्यपि हमें इस पत्रिका के अंक देखने को नहीं मिले तथापि हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि उसमें स्वामीजी से सम्बन्धी सामग्री को ही प्रमुखता दी जाती होगी। रामकृष्ण संघ के अंग्रेजी मासिक 'प्रबुद्ध भारत' के अप्रैल १८९६ ई० अंक के समीक्षा कालम में (पृ० ६२) निम्नलिखित सूचना छपी है— "we have been favoured with copies of a Hindi Monthly Journal named 'Prabhat' devoted to the Hindu Religion, and a Hindi translation of the Swami Vivekananda's opening speech at the Parliament of Religions. We thank Mr. Nakhare the Editor, for them and shall be extremely happy to see 'Prabhat' bringing light to those for whom it has been started. It is published from the olcott press, saugor.'

१८९८ ई० से ही मथुरा की 'निगमागम मण्डली' ने अपनी द्विमासिक पत्रिका 'निगमागम चन्द्रिका' का प्रकाशन आरम्भ किया। चैत्र-वैशाख १९५५ वि० का इसका प्रवेशांक खेतड़ी नरेश श्रीमान अजीत सिंह को समर्पित किया गया है। उक्त मण्डली के उद्देश्य तथा कार्यों का एक सुन्दर विवरण 'प्रबुद्ध भारत' के मार्च १९०० ई० अंक में प्रकाशित हुआ है। 'निमागम-चन्द्रिका' के प्रथम वर्ष के ही माघ-फाल्गुन (जनवरी-

फरवरी १८९६ ई०?) अंक में श्रीरामकृष्ण पर एक लेख है, भ्रान्ति अथवा च्युति के फलस्वरूप उसका शीर्षक इस प्रकार है—'भक्तावधूत श्रीमत् राधाकृष्ण परमहंस जी के उपदेश'। पृष्ठ १६० से १६६ तक करीब छह पृष्ठों के उस लेख के प्रारम्भ में श्रीरामकृष्ण का परिचय कराते हुए लिखा गया है—

"थोड़े से ही दिन हुए बंगलादेश में इन महापुरुष ने जन्म लेकर बहुत से जीवों का उद्धार साधन किया है। महात्मा का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था; जिला चौबीस परगना के अन्तर्गत, दक्षिणेश्वर ग्राम की श्रीमती रानी रासमणि के मंदिर के पुरोहित थे; बालपन से ही इनकी दृष्टि साधन की ओर थी; और थोड़े ही दिन के साधन में अद्भुत विभूतियों का प्रकाश इनमें होने लगा और देखते देखते ही माया रहित हो परमहंस गति को प्राप्त हो गये। इस परमगति को भी पाय इन्होंने देशदेशान्तरों का पर्यटन नहीं किया। समाधि ग्रहण पर्यन्त ये महा पुरुष उसी ग्राम में गंगा के तट पर एक फुलवारी में स्थित रहे। अनुमान आठ वा नौ वर्ष हुए इन्होंने शरीर त्याग कर दिया है।

"इनकी प्रशंसा जो कुछ लिखी जाय थोड़ी है। पश्चिम अर्थात् यूरोप की शिक्षा के प्रभाव से अंग्रेजी पढ़े हुए बालकगण कुमार्गी होते जाते थे, और अपने सनातन धर्म को छोड़कर उपधर्मों की ओर खिचते जाते थे; यह इन्हीं महापुरुष की कृपा है कि, सहस्रों बंग देशवासी युवा अपने धर्म को समझने लगे, यह इन्हीं महापुरुष का प्रभाव है कि प्रसिद्ध ब्रह्म समाज के प्रवर्त्तक और अद्भुतवक्ता श्रीयुत केशवचन्द्र सेनजी की वृत्ति भी सनातन धर्म की अनुयायी हो गयी थी; और उन्होंने अपनी समाजोक्त 'ब्रह्म उपासना' को छोड़कर हरि संकीर्तन द्वारा 'हरि बोल हरि बोल' उच्चारण कर के अपने को पवित्र किया था। इन महापुरुष की अद्भुत विभूति का परिचय इनके शिष्य द्वारा ही प्रकाश होता है। स्वामी विवेकानन्द इन्हीं के शिष्य हैं; जिन्होंने अपनी वक्तृता, गम्भीर ज्ञान, और त्यागवृत्ति द्वारा समस्त अमेरिका के निवासियों को मोहित कर लिया है। गत शिकागो धर्म प्रदर्शिनी में इन्हीं के विज्ञान और सत्युक्त पूर्ण वक्तृता द्वारा वेदोक्त सनातन धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ प्रतिपन्न हुआ है॥

"परमहंसाचार्य रामकृष्ण जो कुछ धर्म्म उपदेश अपने भक्तों को दिया करते थे वे बहुत ही श्रेष्ठ हैं; छोटी छोटी कथाओं में सनातन धर्म के गम्भीर वैज्ञानिक तत्वों को उन्होंने प्रकाशित किया है। यद्यपि इन महापुरुषों की बनाई हुई कोई पुस्तक नहीं है, तथापि उनके भक्तों में से किसी किसी ने उनके कुछ कुछ वाक्य संग्रह किये हैं;- हमारी इच्छा है कि क्रमशः उनको इस प्रबंध में प्रकाश करते रहैं। पुनः उनका जीवन चरित्र भी क्रमशः प्रकाश करने की इच्छा है।' इतना परिचय देने के बाद आगामी साढ़े चार पृष्ठों में श्रीरामकृष्ण के सोलह उपदेश प्रस्तुत किये गये हैं।

१८९७ ई० में स्वामीजी ने अपने कार्य को स्थायी रूप देने के लिए "रामकृष्ण मिशन" नाम से एक समिति का गठन किया और इसके माध्यम से विविध प्रकार के सेवा कार्यों का श्रीगणेश किया। उनके इस ऐतिहासिक कदम का देश भर में स्वागत हुआ परन्तु ऐसे लोगों की संख्या भी कम न थी जो इसे द्वेष और संशय की दृष्टि से देखते थे। उपरोक्त 'निगमागम चन्द्रिका' द्विमासिक के चौथे वर्ष के पांचवें अंक (नवम्बर, १९०० ई० ?) के सम्पादकीय में इस विषय पर बड़े ही सारगर्भित विचार व्यक्त किये गये हैं। सम्पादक महोदय लिखते हैं—

"कोई कोई सनातनधर्म्म प्रेमी सहयोगी श्रीस्वामी विवेकानन्दजी द्वारा स्थापित 'श्रीरामकृष्ण मिशन' के उद्देश्यों वा श्रीस्वामीजी के आचारों की निन्दा करके उनके पुरुषार्थ के विरोधी प्रतीत हुआ करते हैं। एवं ऐसा कहते हैं कि उनके आचार व उनके मिशन की नीति सनातनधर्म्म के सदाचारों से कहीं विरुद्ध प्रतीत होती है। परन्तु गुणग्राही पुरुषों को गुण का अनुसन्धान करना ही उचित है। श्रीस्वामीजी वा उनके सम्प्रदाय के अन्यान्य साधुगणों की गुरुभक्ति, उनका स्वार्थत्याग, विषय वैराग्य, और स्वदेशानुराग, श्रीस्वामीजी का दुर्दमनीय पुरुषार्थ और विद्याभिमानी परम स्वच्छन्द पाश्चिमात्य जातियों

पर सनातनधर्म्म का प्रभुत्व स्थापन करना, एवं जो जातियां पहिले मिशनरी पादरीगणों के सिखाने से भारतवासियों को असभ्य अर्द्धपशु करके समझा करती थी उनपर अपना गुरुत्व स्थापन करके उनका धन धर्मप्रचारार्थ भारतवर्ष में मंगवाना इत्यादि गुण साधारण नही है। यदि सनातन-धर्म्म के धर्म्मशास्त्रोक्त बहिराचारों के विषय में विचार किया जाय एवं उसके साथ ही साथ आजकल के नाना सम्प्रदाय वा पन्थों पर दृष्टि डाली जाय तो यह मानना ही पड़ेगा कि आज दिन आर्य्यप्रजा के अन्तर्गत बहुत से नवीन सम्प्रदाय वा पन्थ हैं कि जो स्थूल बर्ताव द्वारा सनातनधर्म के सदाचारों के बहुधा विरुद्ध प्रतीत होते हैं। परन्तु उन नवीन सम्प्रदाय वा पन्थों द्वारा आजकल अपनी जाति व धर्म को विशेष लाभ न पहुंचने पर भी एवं उनमें इस प्रकार के गुण न रहने पर भी जब हम उन सबों को अपना अंग करके मानते हैं तो 'श्रीराम-कृष्ण पंथ' को अपना करके क्यों न मान लेवें? बहुधा विद्वान्‌जनगणों का यही अनुमान है 'कि श्रीरामकृष्ण मिशन' द्वारा कई प्रकार का लाभ भारतवर्ष को पहुंचने की आशा है।''

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार और 'चन्द्र-कान्ता सन्तति' के सुप्रसिद्ध लेखक बाबू देवकीनन्द खत्री ने सितम्बर १८९८ ई० में काशी में लहरी प्रेस की स्थापना की। बाद में उन्होंने 'सुदर्शन' नामक एक हिन्दी मासिक निकालने की योजना बनायी। यह पत्रिका पं० माधव प्रसाद मिश्र के सम्पादन में १९०० ई० से निकलनी प्रारम्भ हुई। मिश्रजी आगे चलकर द्विवेदीयुग के एक प्रमुख गद्यकार के रूप में विख्यात् हुए। 'सुदर्शन' के पहले अंक में आपने इस पत्रिका के सम्पादन सम्बन्धी नीति की घोषणा इन शब्दों में की थी—''हम यह सूचित करते हैं कि 'सुदर्शन' हिन्दू पत्र है और यह सनातन धर्म को अपना प्राण समझता है। साथ ही व्यक्ति विशेष और सम्प्राय विशेष का इसमें कोई दुराग्रह भी नहीं है।'' यह पत्रिका कुल दो वर्ष चार महीने चलकर बन्द हो गयी। इस पत्रिका में मिश्रजी ने साहित्य सम्बन्धी अनेक लेख, समीक्षाएं और लेख लिखे। यद्यपि हमें 'सुदर्शन' के अंकों का अवलोकन करने का सौभाग्य नही मिला है तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि मिश्रजी ने श्रीरामकृष्ण के बहुत से उपदेशों का अनुवाद करके इसमें नियमित रूप से प्रकाशित किया था। १९०३ ई० में खत्री जी के ही लहरी प्रेस ने इनका एक संकलन 'बंगदेश के सुविख्यात महात्मा परमहंस श्रीरामकृष्ण देव का जीवन-चरित और उपदेश' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया था। पांच आने कीमत तथा १०१ पृष्ठों के इस पुस्तक के प्रथम ८० पृष्ठों में श्रीरामकृष्ण के २९० उपदेश हैं और बाद के २१ पृष्ठो में उनकी जीवनी है।

इस पुस्तक के संकलक और अनुवादक मिश्रजी ने इसके अन्तिमपृष्ठों में लिखा है—''परमहंस देव का चरित बहुत ही विस्तृत और पवित्र है बंगला भाषा के सम्वाद पत्रों में उनके चरित्र और उपदेशों की कई वर्षों से आलोचना हो रही है, बड़ी-बड़ी जीवन चरित की पुस्तकें छपी हैं। अंग्रेजी भाषा के मासिक पत्र भी इनके चरित की चर्चा से खाली नहीं है। विदेशीय पंडित मोक्समूलर साहब ने भी परमहंसजी के विषय में एक पुस्तक लिखी है। हमने इसके चरित्र का दिग्‌दर्शन मात्र किया है, अवकाश मिला तो इनके विषय में विशेष लिखने की आशा है। ऐसा योग्यसिद्ध महापुरुष बहुत दिनों से इस देश में नहीं हुआ। विना पढ़े किस प्रकार भक्तिभाव से पुरुष ऊँचे स्थान पर पहुंच सकता है, इस विषय में रामकृष्णदेव का निर्मल चरित्र उदाहरण है। मथुरानाथ बाबू पच्चीस सहस्र वार्षिक आय की सम्पत्ति इनके नाम कराते थे, पर इन्होने स्वीकार नहीं की। एक सादा वस्त्र शरीर पर रखते थे, बहुधा नग्न रहते थे। लोकेषणा, पुत्रेषणा और वित्तेषणा का पूरा दमन कर दिया था। उनके उपदेश का ऐसा अच्छा ढंग था कि वह चलते, फिरते, उठते, बैठते जो कुछ अपनी अमृतमय रसीली वाणी से कहते थे, सो सबको हृदयङ्गम हो जाता था।

''उनके उपदेश अधिक उपयोगी समझकर हमने बङ्गभाषा से संग्रह किये हैं। पहिले यह 'सुदर्शन' मासिक पत्र द्वारा प्रकाश होने लगे थे, फैजाबाद के प्रसिद्ध भगवद्भक्त वकील बाबू बलदेव प्रसादजी की

प्रार्थना से पुस्तकाकार प्रकाशित किये गये हैं। उपदेशों के अनुवाद करने और प्रूफ देखने में आयुष्मान् बाबू मनोहरलालजी ने विशेष सहायता दी है, इसलिए उनको यहां साधुवाद न देना अनुचित है। इस बार इसके छपने में बहुत शीघ्रता हुई है इसलिए सम्भव है कि इसमें त्रुटियां रही हों, सूचित होने पर दूसरी आवृत्ति में दूर कर दी जायँगी॥

काशी

माधव प्रसाद मिश्र

शिवरात्रि, सं० १९५९

उपरोक्त पुस्तक में संकलित १९ पृष्ठों में लिखी श्रीरामकृष्ण की जीवनी ही हमें अब तक प्राप्त श्रीरामकृष्ण की हिन्दी में प्रथम जीवनी है। जिसका रचनाकाल अनुमानतः १९०१ ई० या १९०२ का प्रारम्भ है। भविष्य में यथासम्भव हम उक्त लेख को भी, उसके ऐतिहासिक महत्त्व को देखते हुए पुनर्मुद्रित करेंगे।

वर्तमान लेख में हमने स्वामी विवेकानन्द के जीवन-काल में ही (१८९८ से १९०२ ई० के दौरान) हिन्दी में प्रकाशित 'श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा' सम्बन्धी साहित्य का सर्वेक्षण करने का प्रयास किया है। उद्धरणों को हमने यथावत् ही रहने दिया है ताकि आपको उस काल की विकासमान हिन्दी भाषा तथा शैली का भी दिग्दर्शन हो जाय। यदि किन्हीं पाठक को इस विषय से सम्बन्धित कोई और तथ्य प्राप्त हों तो हमें सूचित करने की कृपा करें। बाद में हम 'द्विवेदी युग में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य' पर भी लिखने की आशा रखते हैं।

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये
२३.	श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४।	श्री शतदल साधु खान	—	सोनारपुर(पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५.	श्री ए० जी० डगांवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये
२६.	श्रीमती उषा गुप्ता	—	रायपुर (म० प्र०)	२०० रुपये
२७.	श्री पी० राम	—	पटना (बिहार)	२५१ रुपये

निवेदन—१ स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

सत्यमेव जयते-1

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

सत्य के सम्बन्ध में कौन नहीं जनता ? जो पहला पाठ बालक अपनी माता की गोद में या शिष्य गुरु के आश्रम में सीखता है वह है—"सत्यं वद धर्मं चर।" प्रत्येक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज में सत्य को इतना महत्व दिये जाने पर भी दैनन्दिन जीवन में जितना निरादर सत्य का होता है, सम्भवतः उतना और किसी नैतिक आदर्श का नहीं। इसका क्या कारण है ? इसे समझने के लिए हमें सत्य के अर्थ एवं स्वरूप की गहराई में पैठना होगा।

सत्य के विभिन्न अर्थ

सामान्यतः सत्य को सत्य बोलने के अर्थ में ही समझा जाता है। यह योग के अहिंसादि पांच यमों में से एक है। व्यासदेव सत्य की इस प्रकार से परिभाषा करते हैं—सत्यं यथार्थे वाङ्‌मनसे यथादृष्टं यथानुमितं यथाश्रुतं तथा वाङ्‌मनश्चेति।" अर्थात् यथाभूत अर्थ-युक्त वाक्य और मन ही सत्य है। अर्थात् जो कुछ दृष्ट, अनुमित अथवा श्रुत हुआ है, उसी प्रकार का वाक्य और मन अर्थात् कथन और चिन्तन सत्य है। इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर हम पायेंगे कि सत्य के दो अंग हैं—पहला वह वस्तु, स्थिति अथवा सत्ता जिसके अनुरूप मन और वाणी हो, और दूसरा, मन और वाणी का वह आचरण जो सत्य के अनुरूप हो। सत्य का उपयोग सत् या सत्ता के अर्थ में भी होता है; और मन और वाणी से उसकी स्वीकृति भी होती है। यही एकमात्र यम है जिसका एक साध्य और साधन पक्ष, तथ्य तथा आचरणीय पक्ष दोनों हैं। एक उदाहरण से इसे समझने का प्रयत्न करें। एक मेज पर एक घड़ी पड़ी है। मेज तथा उस पर घड़ी की उपस्थिति एक सत्य है। तथा हमारे मन द्वारा उसकी स्वीकृति तथा वाणी द्वारा उसका प्राकट्य भी सत्य कहलाता है। सत्य के इन दोनों पक्षों को भली-भांति समझना आवश्यक है।

सत्य सत् या सत्ता के अर्थ में

उपर्युक्त परिभाषा में तीन प्रकार के सत्यों का संकेत दिया गया है: दृष्टि, अनुमित और श्रुत। ये तीनों ही हमारे प्रमा या सत्यज्ञान के साधन हैं, तथा प्रमाण कहलाते हैं। नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त सत्य-ज्ञान प्रत्यक्ष-प्रमाण कहलाता है। लिंग या लक्षण की सहायता से अनुमित ज्ञान अनुमान-प्रमाण कहलाता है। फिर शास्त्र या आप्त पुरुषों के वचनों से भी हमें सत्य का ज्ञान होता है। यह प्रमाण शब्द-प्रमाण या श्रुतिप्रमाण कहलाता है। अपनी आंखों से मेज पर पड़ी घड़ी को देखने पर हमें प्रत्यक्ष रूप से सत्य का अनुभव होता है। दूर उठ रहे धुएं को देखकर हम वहाँ अग्नि का अनुमान करते हैं। यह अनुमित सत्य का दृष्टान्त है। तथा किसी के कहे जाने पर कि अमुक मुहल्ले में एक मकान गिर गया है, इत्यादि, उन कथनों पर विश्वास करने पर हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह श्रुतसत्य है। सामान्यतः सत्य ज्ञान के ये तीन प्रमाण ही मुख्य रूप से स्वीकार किये गये हैं।

लेकिन क्या ये तीनों प्रमाण पूर्णरूप से त्रुटिरहित हैं ? आसमान नेत्रों से नीला दिखायी देता है, लेकिन सत्य तो यह है कि उसका कोई रंग नहीं होता। सूर्य उदित और अस्त होता दिखायी देता है, पृथ्वी के चारों ओर घूमता दिखायी देता है लेकिन सत्य तो यह है कि

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। अनुमान प्रमाण भी त्रुटिरहित नहीं है। अगर कोई वाष्प या बादल के टुकड़े को धुआं समझकर यह अनुमान लगाये कि उस स्थान-विशेष में अग्नि है, तो उसका यह निर्णय असत्य होगा। शब्द या आप्त प्रमाण भी दोषहीन नहीं है। विभिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न बातें प्राप्त होती हैं। एक ही वस्तु के बारे में दो व्यक्ति अलग-अलग प्रकार की सूचना दे सकते हैं। एक व्यक्ति गिरगिट को लाल देखकर हमें यह कहे कि वह लाल है और दूसरा उसी को हरा देखकर हरा कहे, तो किसकी बात को माना जाय ?

एक और उदाहरण लेंये। हाथी को जानने के लिए पाँच अन्धे गये। पाँचों ने हाथ से उसके विभिन्न अंगों को छूकर उसके बारे में भिन्न-भिन्न धारणाएँ बनायीं। स्पर्शजन्य इन्द्रिय-ज्ञान होने के कारण उन्हें हाथी का जो ज्ञान हुआ वह असत्य तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन उसे पूर्ण सत्य भी नहीं कहा जा सकता।

सत्य का काल तथा अवस्था के साथ भी सम्बन्ध है। स्वप्नावस्था में स्वप्न हमें सत्य प्रतीत होता है। लेकिन जाग्रतावस्था में वह नहीं रहता। और गाढ़ी निद्रा में न तो स्वप्न और न जाग्रतावस्था का जगत् ही रह जाता है।

उपर्युक्त विचार का सारांश यह है कि सत्य देश, काल, अवस्था, व्यक्ति आदि पर निर्भर करता है। निरपेक्ष सत्य नाम की कोई वस्तु या चीज नहीं है। लेकिन हमारे दैनन्दिन जीवन का कार्य इन सापेक्ष सत्यों के आधार पर ही चलता रहता है। इसे शास्त्रीय या दार्शनिक भाषा में व्यावहारिक सत्य कहते हैं।

हम अपने प्रमाणों से किसी निरपेक्ष सत्य को नहीं जान सकते। हमारे ज्ञानगम्य सभी सत्य सापेक्ष होते हुए भी ऋषि मनीषियों का कहना है, कि एक सत्य इन सब से निरपेक्ष भी है, वह जो देश, काल, व्यक्ति अथवा अवस्था से प्रभावित नहीं होता। यह सत्य सत्ता-मात्र रूप से सर्वत्र, सर्वावस्थाओं में विद्यमान रहता है। इसे ही पारमार्थिक सत्य कहा जाता है। यही सत् या परमेश्वर भी है।

इन दो सत्यों के अतिरिक्त एक और सत्य भी है जो प्रातिभासिक सत्य कहलाता है। जैसे अंधेरे में पेड़ के ठूँठ को बच्चा भूत समझ ले, उसे ही चोर पुलिस समझे तथा चोर को खोजनेवाला पुलिस चोर ही समझ बैठे। रस्सी को सर्प समझना, रेगिस्तान में मरीचिका का भ्रम आदि इसी प्रातिभासिक सत्य के दृष्टान्त हैं। एक और दृष्टान्त लें। एक ही स्त्री, पुत्र के लिए माता, पति के लिए पत्नी, भाई के लिए बहन, तथा पिता के लिए पुत्री है। हाड़-मांस से निर्मित एक ही स्त्री मनःस्थिति एवं सम्बन्ध के अनुसार भिन्न-भिन्न हो गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री की एक तो यथार्थ ईश्वर द्वारा निर्मित सत्ता है और दूसरी मनोमयी मानव निर्मित सत्ता भी है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रत्येक वस्तु के दो रूप होते हैं। एक तो उसका वास्तविक रूप या सत्ता और दूसरा उसका वह रूप जो हमें इन्द्रियों एवं मन के माध्यम से ज्ञात होता है। स्वामी विवेकानन्द इसे समझाने के लिए गणित की सहायता लेते हैं। मान लीजिए कि "क" वस्तु का वास्तविक स्वरूप है। "ख" हमारा मन है, तो हम यह कह सकते हैं कि हमें जिसका ज्ञान होता है वह है "क+ख"।

उपर्युक्त दार्शनिक विश्लेषण सत्य की साधना की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सत्यवचन, सत्यपालन का उद्देश्य है उस पारमार्थिक सत्य का साक्षात्कार करना जो वस्तु का स्वभाव है, जो Truth in itself है, तथा जिसे हमने उपर्युक्त विश्लेषण में "क" कहा। लेकिन उसका साधन तथा आचरण व्यावहारिक सत्य को लेकर ही होगा। यानी, व्यावहारिक सत्य के सहारे हमें पारमार्थिक सत्य तक पहुँचना है। जितनी मात्रा में हम अपने मन एवं इन्द्रियों की तथा अपने प्रत्यक्षानुमानादि प्रमाणों की, सीमा से ऊपर उठने में समर्थ होंगे, उतनी ही मात्रा में हम पारमार्थिक सत्य के निकट पहुँच सकेंगे। जितनी

मात्रा में हमारा मन पवित्र होगा, उतनी ही मात्रा में हम सत्य-पालन एवं सत्य में प्रतिष्ठित होने में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

इससे यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक सत्य के केवल आंशिक रूप से सत्य होने के कारण सत्य की साधना कभी भी त्रुटिहीन या पूर्णतया दोषहीन नहीं हो सकती। यही कारण है कि शास्त्रकारों ने सत्य-साधना के विषय में अनेक शर्तों का उल्लेख किया है, जिनकी चर्चा नीचे की जायेगी।

आधुनिक युग के सत्य के सब से महान पुजारी महात्मा गाँधी के अनुसार सत्य परमात्मा का श्रेष्ठतम नाम है। उनके अनुसार सत्य ही भगवान है। सत् शब्द का अर्थ अस्तित्व है, तथा जहाँ यह सत् है, वहाँ ज्ञान और आनन्द भी है। जो सत् है, वही ज्ञान और वही आनन्द भी है। सत्य या सत् के प्रति आस्था और विश्वास होना, उसी को केन्द्र बनाकर जीवन-यापन करना ही हमारे समग्र जीवन का एकमात्र लक्ष्य या उद्देश्य होना चाहिए। इसी में मानव जीवन की सार्थकता है। महात्मा गाँधी का यह निश्चित मत है कि यदि हम इस सत्यस्वरूप परमात्मा को केन्द्र बनाकर कार्य करें तो नैतिकता के अन्य समग्र नियमादि अपने आप ठीक हो जाएंगे। सत्यपालन के बिना अन्य यम-नियमों का पालन असम्भव है। यह सत्य तो पारसमणि या कामधेनु के समान है, क्योंकि इसमें प्रतिष्ठित होने पर समग्र ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

सत्य की साधना

सत्य के स्वरूप की उपर्युक्त चर्चा के बाद, अब हम सत्य की साधना की जटिलताओं को समझने का प्रयत्न करेंगे। श्रीरामकृष्ण के कथनानुसार सत्य ही कलिकाल की तपस्या है। श्रीमद्भागवत के अनुसार भी तप, शौच, दया और सत्य, इन चार चरणों में से एकमात्र सत्य रूप चरण ही कलियुग में धर्म को धारण करता है।

सत्यपालन कायिक, वाचिक तथा मानसिक—तीनों रूपों में करने पर ही पूर्ण कहला सकता है। कायिक या व्यावहारिक जीवन में सत्याचरण का अर्थ है—जैसा मुँह से बोला गया है, उसी के अनुसार आचरण करना। सामाजिक नियम और मर्यादाओं का पालन, व्रत या प्रतिज्ञाओं का दृढ़तापूर्वक पालन आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं। हरिश्चन्द्र, भीष्म पितामह आदि इस व्रत रूप या प्रतिज्ञा रूप सत्य के पालन के कारण ही महान् सत्यवादियों के रूप में आदरणीय हैं। पतिव्रता स्त्री द्वारा अग्नि के समक्ष पातिव्रत्य की प्रतिज्ञा करने पर उसे आजन्म पालन करना भी सत्य की साधना का अंग है।

उपर्युक्त दृष्टान्त किसी सत्य या प्रतिज्ञा के पालन से सम्बन्धित हैं। लेकिन सत्य के साधक को अपने मुँह से निकले शब्दों के अनुरूप दैनन्दिन जीवन में भी आचरण करना होगा। इसके अनेक दृष्टान्त श्रीरामकृष्ण के जीवन में हमें मिलते हैं। एक दिन उनके मुँह से अनायास निकल पड़ा कि अमुक के घर पर पूरी नहीं खाएंगे। इस कथन की रक्षा के लिए उन्होंने केवल मिठाइयों द्वारा ही पेट भरा। अगर वे कह बैठते कि मैं शौच को जाऊँगा, तो शौच का वेग न होने पर भी सत्य की रक्षा के लिए जलपात्र लेकर शौच के स्थान तक जाते थे। किसी बात का तीन बार मुँह से उच्चारण कर देने पर वह उनके लिए त्रिसत्य या अकाट्य सत्य हो जाती थी। एक ईर्ष्यालु पुजारी ने एक बार श्रीरामकृष्ण पर पद-प्रहार किया था। श्रीरामकृष्ण जानते थे कि यदि यह बात उनके परम भक्त मथुरबाबू को ज्ञात हो जाय तो वे उस पुजारी को कठोर दण्ड दिये बिना नहीं रहेंगे। लेकिन करुणावतार श्रीरामकृष्ण यह नहीं चाहते थे। अतः यह बात उनके मुँह से न निकले, इस उद्देश्य से उन्होंने अपने भान्जे हृदय के सामने तीन बार कहा, "पुजारी ने लात मारी है, यह बात मैं किसी से नहीं कहूँगा।" इस तरह "त्रिसत्य" करने के बाद वे निश्चिन्त हो गये तथा वह बात कभी उनके मुँह से नहीं निकली। श्रीरामकृष्ण के एक शिष्य लाटू महाराज एक रात बरसते पानी में भीगते तथा घुटनों भर जल पार करके

एक भक्त के यहाँ गये, क्योंकि उन्होंने उसे कहा था कि वे उसके यहाँ उस समय आयेंगे। इस घटना के विषय में पूछने पर बाद में लाटू महाराज ने कहा था कि इस तरह की वचनबद्धता मात्र ही सत्य नहीं है। सत्य का अर्थ है अपनी अन्तरात्मा का अनुगमन करना। यही बात महात्मा गाँधी भी कहते हैं। उनके अनुसार सत्यपालन का अर्थ है, जिसे हम सत्य एवं न्याय समझते हैं, उसका अनुगमन करना, उसके अनुरूप आचरण करना।

पातंजल योगशास्त्र के अनुसार सत्य, अहिंसादि पाँच यमों में दूसरा यम है। "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।" अहिंसा को यमों में सर्वोच्च एवं प्रथम स्थान दिया जाता है, लेकिन महात्मा गाँधी प्रथम स्थान सत्य को प्रदान करते हुए कहते हैं कि सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह अभिन्न हैं। उनके अनुसार यदि सत्य परमात्मा है, तो अहिंसा सार्वभौमिक प्रेम है। सत्यस्वरूप परमात्मा साध्य है तथा अहिंसादि अन्य यम उसके साधन हैं। उनके मतानुसार ब्रह्मचर्यादि अन्य यमों का पालन किये बिना यथार्थतः सत्य का पालन सम्भव नहीं है। सत्य का अनुसरण करना इतना आसान नहीं है, जितना आपात दृष्टि से प्रतीत होता है। स्वयं गांधीजी का कथन है कि यदि सत्य-पालन पुष्पों की सेज के समान होता तो सभी उसका अनुसरण कर लेते। हमें सदा सत्य का पालन करना चाहिए, भले ही प्रलय ही क्यों न हो जाये।

वाचिक सत्य

वाणी का सत्य सत्य की साधना का एक महत्वपूर्ण अंग है।" सत्य-वचन के सम्बन्ध में व्यासदेव ने कुछ महत्वपूर्ण शर्तें बतायी हैं—"यथाभूत अर्थयुक्त वाक्य और मन ही सत्य है।" अर्थात् जो कुछ दृष्ट, अनुमति अथवा श्रुत हुआ है, उसी प्रकार का वाक्य और मन अर्थात् कथन और चिन्तन सत्य है। अपने ज्ञान की संक्रान्ति के लिए जो वाक्य कहा जाये, वह वाक्य वंचनापरक या भ्रान्तिकारक या श्रोता के लिए अर्थशून्य न हो। वह वाक्य सर्वभूत का उपघातक न होकर उपकार के लिए प्रयुक्त होना चाहिए क्योंकि यदि वाक्य कहने पर किसी का उपघात हो जाय तो वह सत्यरूप पुण्य नहीं बल्कि पाप ही होता है। अतएव विचारपूर्वक सर्वभूतहितजनक सत्य वाक्य ही कहना चाहिए।"

सत्य की उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार सत्यवचन की तीन शर्तें हुई—

(१) वचन तथ्यानुरूप हो। (२) वचन वंचनापरक या भ्रान्तिकारक न हो तथा (३) वह सर्वभूत-उपकारक हो।

ठीक-ठीक सत्य-बोल पाना कितना कठिन है, इसका संकेत हमें निम्न घटना से प्राप्त होता है। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन अपने शिष्य राखाल, (जो आगे चलकर स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम से विख्यात हुए) से कहा कि आज मैं तेरा मुँह नहीं देख पा रहा हूँ, तेरे मुँह पर एक कालिमा सी छायी हुई है, कहीं आज तूने कोई बुरा कर्म तो नहीं किया है? राखाल सोचने लगे किन्तु उन्हें किसी अनुचित कृत्य का स्मरण नहीं हुआ। तब श्रीरामकृष्ण ने पूछा कि आज तूने किसी से झूठ तो नहीं बोला है? तब राखाल को याद हो आया कि हँसी-मजाक में उन्होंने एक असत्य बात कह दी थी। इस पर श्रीरामकृष्ण ने कहा कि आगे हँसी-मजाक में भी कभी झूठ मत बोलना।

हँसी के अतिरिक्त भय, लोभ, मोहादि के द्वारा प्रेरित होकर भी व्यक्ति झूठ बोल देता है। ईसामसीह के प्रमुख शिष्य पीटर ईसा के बन्दी बनाये जाने के बाद भय के कारण तीन बार झूठ बोले कि मैं ईसा को नहीं जानता। अतः सत्यवचन के लिए भय, लोभादि पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। उत्तेजित होने पर भी व्यक्ति अपने मुंह से अनाप-शनाप बकने लगता है। अतः गीता में "अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्" को वाणी का तप कहा गया है। सत्य वचन की इस कठिनाई के कारण बहुत से लोग मौनावलम्बन करते हैं। वस्तुतः सत्य वचन की पहली सीढ़ी मौन तथा मित भाषण ही है। मौन रहने का अभ्यासी साधक ही सावधानीपूर्वक तथा संयत वचन बोल सकता है।

अधिकांश लोगों के लिए सत्य का इतनी कड़ाई से पालन सम्भव नहीं होता। ऐसे लोगों के लिए जैन शास्त्रों सत्य-अणुव्रत के पालन का विधान है, जिसके अनुसार स्थूलमृषावाचन का त्याग किया जाता है। झूठी गवाही नहीं देना, किसी का रहस्योद्घाटन न करना, कूट लेखन या जाली दस्तावेज प्रस्तुत नहीं करना, कन्या-भूमि आदि के विषय में असत्य भाषण न करना इत्यादि इसके अन्तर्गत आते हैं। ये प्रारम्भिक नियम मात्र हैं। अन्ततः साधक को सत्य के पूर्ण आचरण या सत्य-महाव्रत के पालन की उच्चतम सीढ़ी पर चढ़ना होता है।

महाभारत के युद्ध में युधिष्ठिर द्वारा कहा गया, "अश्वत्थामा हतः" वंचनापरक वाक्य के अन्तर्गत होने के कारण असत्य की श्रेणी में ही आता है। अधूरा वाक्य कहना, पूर्ण तथ्यों को न कहकर कुछ तथ्य कहना तथा कुछ छिपा जाना, आदि बातें भ्रांति पैदा कर सकती हैं। अगर हिन्दी न जानने वाले व्यक्ति को हिन्दी में सत्यवचन कहा जाए तो वह सत्य होते हुए भी उसके लिए अर्थहीन होगा। अतः वह सत्य की श्रेणी में नहीं आ सकता।

(क्रमशः)

कहानी

जड़ भरत

—स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अमेरिका में रामायण, महाभारत, जड़ भरत इत्यादि विषयों पर भाषण दिया था। इन्हीं पर्वों को एकत्र कर "महापुरुष प्रसंग" नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी। श्रीमद्भागवत् में जड़ भरत की कहानी विस्तृत रूप में है।)

प्राचीन काल में भरत एक देश के राजा थे। भरत के नाम पर ही हमारे देश का नाम भारत वर्ष दिया गया। राजा भरत में वीरता एवं धार्मिकता का सुन्दर समन्वय हुआ था।

राजा भरत जब वृद्ध हुए, तब वे अपने पुत्र को सिंहासन सौंप वन में तपस्या हेतु चले गये। अन्ततः वे हिमालय की एक छोटी नदी के किनारे जाकर उपस्थित हुए। वहां अपने हाथों से घास-फूस इकट्ठा कर उन्होंने एक पर्ण कुटीर निर्मित किया। वे इसके उपरांत वहीं रहने लगे। अहर्निश वे ईश्वर-भक्ति में लीन रहते एवं कंद-मूल खाकर जीवन व्यतीत करते।

एक दिन जब वे नदी में स्नान कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि एक हिरणी पानी पी रही थी। ठीक उसी समय पहाड़ की चोटी से सिंह का गर्जन सुनायी पड़ा। भयभीत हो वह हिरणी अचानक कूदी एवं एक चट्टान पर गिर पड़ी। वह हिरणी गर्भवती थी। चट्टान पर गिरते ही वह हिरणी मर गयी परन्तु नवजात पशु को कुछ न हुआ। नवजात पशु पानी में लुढ़क कर बहने लगा। जब वह भरत के सामने आया तो भरत का हृदय द्रवीभूत हो गया। वह उस हिरण-शिशु को अपनी कुटिया में ले आये।

भरत नर्म-नर्म घास लाकर उसे खिलाते, बड़े प्रेम से उसे पालते। हिंस्र पशुओं के भय से वे सदा उसे अपनी नजरों से दूर न होने देते। धीरे-धीरे वह हिरण-शिशु बड़ा हो गया। देखते ही देखते उस हिरण ने भरत के हृदय पर अधिकार प्राप्त कर लिया। कुछ देर यदि भरत

की नजरों से दूर हो जाता, तो भरत अस्थिर हो जाते। इस काम में वे इतना व्यस्त हो गये कि जप-तप सब कुछ छूट गया।

हिरण जब और बड़ा हुआ तो वह एक दिन कुटिया को छोड़ वन में भाग गया। फिर वह न आया। भरत व्याकुल हो उठे, वे नदी के किनारे, जंगल में—सभी जगहों में उसे खोजने लगे। न मिलने पर निराश होकर वे अपनी कुटिया में आ गये। उसके बाद भरत सदा हिरण की ही बात सोचते— शायद उसे बाघ ने खा लिया या फिर वह पथ भटक गया—इत्यादि। प्रत्येक सूर्योदय के साथ भरत के मन में इस आशा का उदय होता कि शायद आज वह लौट आये। दिन पर दिन, महीने पर महीने बीत गये परन्तु वह हिरण न आया। भरत बैठे बैठे सोचते रहते, सिर्फ उस हिरण के ही बारे में।

कुछ दिनों के बाद भरत की मृत्यु हो गयी। मरण-काल में भी वे हिरण की ही बात सोच रहे थे। इसी-लिए उनका पुनर्जन्म हिरण के ही रूप में हुआ। कहा जाता है, कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें पूर्व-जन्म की बातें याद रहती हैं। भरत को पूर्व-जन्म की सारी बातें याद थीं। हिरण रूप में ही उन्होंने सोचा कि ईश्वर को भूल हिरण के बारे में सोचते रहने के कारण ही आज उन्हें हिरण-रूप में ही जन्म ग्रहण करना पड़ा। अन्य हरिणों की भांति वे वनों में नहीं घूमते थे। ऋषि-मुनियों के आश्रम के समीप ही मंडराते एवं उनका योग तथा वेद-पाठ सुनते।

कुछ दिन बाद हिरण-भरत की भी मृत्यु हो गयी। इस बार उन्होंने एक ब्राह्मण के घर में जन्म-ग्रहण किया। इस बार भी उन्हें पूर्व-जन्म की बातें याद थीं। इस बार उन्होंने सोचा कि अब किसी माया, किसी बंधन में आबद्ध नहीं होंगे।

धीरे-धीरे भरत बड़े होने लगे। उनका शरीर सुगठित एवं हृष्ट-पुष्ट था। वे किसी के साथ बात नहीं करते थे, जहां बैठते वहीं बैठे रहते। जन्म के पश्चात् किसी ने उन्हें बातें करते हुए नहीं देखा था। सभी उन्हें पागल और गूंगा समझते थे। इस तरह चुपचाप एक स्थान पर बैठे रहने के कारण उनका नाम जड़-भरत हो गया।

कुछ दिन पश्चात् उनके पिता का देहांत हो गया। सभी भाइयों ने मिलकर सम्पत्ति का बंटवारा किया। भरत को उन्होंने कुछ न दिया। फिर भी हर दिन वे उन्हें खाने को कुछ न कुछ दे देते।

भरत कभी कोई काम नहीं करते थे। परन्तु यदि कोई उनको कोई काम करने को कहता, तब वे उसे करके ही छोड़ते थे। जब वह स्वयं आकर कहता कि जाओ अब जरूरत नहीं, तभी वे छोड़ते थे। भाई लोग कभी-कभी उन्हें खेत के कामों में लगा देते थे परन्तु घर में भाभियां उन्हें बड़ा कष्ट देतीं। भरत सब कुछ चुपचाप सहन करते रहते।

अन्ततः एक दिन इस यंत्रणा से तंग आकर वे घर से निकल गये। कुछ दूर जाकर वे एक पेड़ के नीचे बैठ गये। ठीक उसी समय राजा पालकी पर सवार होकर उधर से निकले। पथ में अचानक एक पालकी-वाहक बीमार हो गया। सिपाहियों ने भरत को ही हृष्ट-पुष्ट देख पकड़ लिया। सभी के साथ कंधे में कंधा मिला-कर वह भी चलने लगे।

भरत ने जीवन में कभी ऐसा काम नहीं किया था। इसलिए वे दूसरे वाहकों के साथ कदम नहीं मिला पा रहे थे - अतः पालकी हिलने लगी। राजा ने पूछा, "पालकी इतनी हिल क्यों रही है ?"

वाहकों ने कहा, "महाराज, यह नया व्यक्ति हम-लोगों के साथ नहीं चल पा रहा है। इसलिए पालकी हिल रही है।"

सबल स्वस्थ शरीर होने पर भी भरत उनके साथ चल नहीं पा रहे थे, यह देख राजा ने उस पर व्यंग एवं कटाक्ष किया। भरत फिर चलने लगे। पालकी पुनः पूर्ववत हिलने लगी। तब राजा क्रुद्ध होकर उसे दुर्वचन कहने लगे।

यह सुन भरत ने कहना प्रारम्भ किया। जीवन में यह पहली बार उन्होंने बात की। राजा के व्यंग एवं कटाक्ष पर भारत ने ऐसी ज्ञानपूर्ण बातें कहीं कि राजा चकित रह गये। राजा भी ज्ञानी पुरुष थे एवं उन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। भरत के वचनों को सुन राजा ने सोचा कि अवश्य ही यह कोई महापुरुष है।

तुरंत राजा पालकी से उतर कर भरत के सामने आये एवं उन्हें प्रणाम किया। भरत से राजा ने क्षमा याचना की एवं आग्रह किया कि वे कुछ धर्म-वचन कहें। भरत ने उन्हें धर्म एवं ज्ञान संबंधी अनेक बातें बतायी।

राजा ने उनसे विदा लेकर प्रस्थान किया परन्तु भरत फिर पूर्ववत चुपचाप रहने लगे। कुछ दिनों के बाद उनकी मृत्यु हो गयी। इस बार उन्होंने पुनर्जन्म नहीं ग्रहण किया। उन्हें मुक्ति मिल गयी। उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

श्रीरामकृष्ण की अंत्य-लीला

—स्वामी प्रभानन्द

मैंने माता के पास एक मात्र भक्ति की प्रार्थना की थी। श्री माता के पादपद्मों में फूल चढ़ाकर हाथ जोड़ मैंने कहा था—माँ, यह लो तुम अपना ज्ञान और यह लो अज्ञान, मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपनी शुचिता और यह लो अपनी अशुचिता, मुझे शुद्धा भक्ति दो, यह लो अपना पाप और यह लो अपना पुण्य, यह लो अपना भला और यह लो अपना बुरा, मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपना धर्म और यह लो अपना अधर्म, मुझे शुद्धा भक्ति दो।"

"यदि शूकर का मांस खाकर भी ईश्वर के पाद पद्मों में किसी की भक्ति हो, तो वह पुरुष धन्य है। और यदि हविष्य भोजन करके भी संसार में आसक्ति रही..."

डाक्टर साहब ने ठाकुर के वाक्य को स्वयं पूरा करने के लिए कहा, "तो वह अधम है। यहाँ एक बात कहता हूँ। बुद्ध ने शूकर मांस खाया था। शूकर मांस खाया नहीं कि पेट में शूल होने लगा। इस बीमारी में बुद्ध अफीम का सेवन करते थे। निर्माण-सिर्वाण जानते हो क्या है? बस अफीम खाकर पीनक में पड़े रहते थे—वाह्य संसार का कुछ ज्ञान नहीं रहता था,—यही हो गया।"

बुद्धदेव के निर्वाण की यह अनोखी व्याख्या सुनकर सब लोग हँसने लगे। श्रीरामकृष्ण ने (श्याम बसु से) —"संसार धर्म में दोष नहीं, परन्तु ईश्वर के पाद-पद्मों में मन रखकर कामना रहित होकर कर्म करना चाहिये। देखो न अगर किसी की पीठ में एक फोड़ा हो जाता है तो सब के साथ वह बातचीत भी करता है और घर के काम-काज भी देखता है, परन्तु उनका मन फोड़े पर ही लगा रहता है।

"संसार में बदचलन औरत की तरह रहो। उनका मन तो यार पर लगा रहता है, पर वह घर का सब काम-काज संभालती रहती है।"

इसके बाद थियॉसफी के सम्बन्ध में कुछ देर तक बातें हुईं। श्याम बाबू थियॉसफी के सम्प्रदाय के हैं। इस सब के बाद श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर सरकार से कहा, "यदि तुम बुरा न मानो तो तुमसे एक बात कहूँ। यह सब तो बहुत किया—रुपया, मान, लेक्चर, अब थोड़ा सा मन ईश्वर पर भी लगाओ। और यहाँ कभी कभी आया करो। ईश्वर की बातें सुनकर उद्दीपन होगा।"

उसी समय गिरीशचन्द्र घोष आ गये। उनके साथ डाक्टर की विज्ञान सभा (Science Association) सम्बन्धी बातें होने लगी। डाक्टर सरकार (गिरीश से)

"और चाहे सब काम करो, पर ईश्वर समझकर उनकी पूजा न किया करो। ऐसे भले आदमी को क्यों बिगाड़ रहे हो ?"

गिरीश—"क्या करूँ महाशय ? जिन्होंने इस संसार—समुद्र और सन्देह-सागर से मुझे पार किया, उन्हें और क्या मानूँ बतलाइये ? उनमें ऐसी कोई भी चीज नहीं है जिसे मैं पवित्र न मानूँ। उनकी विष्ठा तक को तो मैं गन्दी नहीं मानता।"

डाक्टर—"मैं विष्ठा के लिए नहीं कहता, मुझे भी उससे घृणा नहीं है।···क्या मैं इनके पैरों की धूलि नहीं ले सकता यह देखो; डाक्टर साहब श्रीरामकृष्ण की पद-धूलि धारण करते हैं। गिरीश—"इस शुभ मुहूर्त पर देवदूत भी बधाई दे रहे हैं।"

डाक्टर—"तो पैरों की धूल लेने में इतना आश्चर्य क्या है ? मैं तो सब के पैरों की धूल ले सकता हूँ। दीजिये, दीजिये (सब के पैरों की धूल लेते हैं।)"

डाक्टर सरकार (श्रीरामकृष्ण से)—"अच्छा, भाव के आवेश में तुम दूसरों की देह पर पैर रख देते हो, यह अच्छा नहीं।"

श्रीरामकृष्ण—"मुझे यह ज्ञान थोड़े ही रहता है कि मैं किसी की देह पर पैर रख रहा हूँ।"

डाक्टर साहब—"वह अच्छा नहीं, इतना तो बोध होता है ?

श्रीरामकृष्ण—"भावावेश में मुझे क्या होता है, यह तुमसे कैसे कहूँ। उस अवस्था के बाद सोचता हूँ कि शायद इसलिए मुझे रोग हो रहा है। ईश्वर के भावावेश में मुझे उन्माद हो जाता है। उन्माद में इस तरह हो जाता हूँ, मैं क्या करूँ ?

डाक्टर सरकार (उपस्थित सब से)— ये (श्रीरामकृष्ण) मान गये। अपने कार्य के लिये ये पश्चाताप कर रहे है। यह कार्य अन्यायपूर्ण है, यह ज्ञान भी इन्हें हैं।"

श्रीरामकृष्ण—(नरेन्द्र से) "तू तो बड़ा चण्ट है, इसका अर्थ इन्हें समझा क्यों नहीं देता ?" नरेन्द्र चुप रहे। गिरीश (डाक्टर साहब से)—महाशय आपने समझने में भूल की है। उन्हें इस बात का दुख नहीं है कि उन्होंने समाधि-अवस्था में भक्तों के शरीर को स्पर्श किया। उनका स्वयं का शरीर नितान्त शुद्ध तथा पापरहित है। वे जो दूसरों को इस प्रकार छूते हैं, यह उन्हीं लोगों के कल्याणार्थ है। कभी कभी उनके मन में यह बात उठती है, कि शायद उन लोगों के पाप अपने ऊपर ले लेने के कारण ही उन्हें यह शारीरिक कष्ट हुआ हो।

"आप अपनी ही बात सोचिये। एक बार आप को उदरशूल हुआ था। उस समय क्या आप दुःखित नहीं होते थे कि रात को इतनी इतनी देर तक जागकर क्यों पढ़ा ? परन्तु इसका अर्थ क्या यह हुआ कि रात को देर तक पढ़ना कोई बुरी बात है ? इसी प्रकार वे (श्रीरामकृष्ण) भी सम्भव है, दुखित हों कि वे रुग्ण हैं। परन्तु उनके मन में यह भाव नहीं आता कि दूसरों के कल्याण के लिये उन्होंने उन लोगों को जो स्पर्श किया वह ठीक न था।"

डाक्टर सरकार कुछ लज्जित से हुए और गिरीश से कहा, "मैं तुमसे हार गया, अपनी चरण-धूलि मुझे लेने दो।" वे गिरीश के पैरों की धूल लेते हैं। कुछ और देर तक वार्तालाप करके डाक्टर सरकार ने कहा, 'जितने भी धर्माचार्य हुए है—ईशू, चैतन्य, बुद्ध, मुहम्मद इन सब में अन्त में अहंकार आ गया—कहा—जो कुछ मैं कहता हूँ, वही ठीक हैं—कैसा आश्चर्यजनक।"

गिरीश (डाक्टर से)—महाशय; वही दोष आप पर लागू है। आप इन सब पर अहंकार दोष लगा रहे हैं, आप उनमें बुराई देख रहे हैं बस इसीलिये तो आप पर भी अहंकार का दोष लगाया जा सकता है।

डाक्टर सरकार चुप रहे।

नरेन्द्र (डाक्टर सरकार से)—इन्हें जो हम लोग पूजते हैं, वह पूजा मानो ईश्वर की पूजा है। इन बातों को सुनकर श्रीरामकृष्ण बालक की तरह हँस रहे है।[२]

(१) श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, तीसरा खण्ड पृष्ठ २५६-२५९

(२) श्रीरामकृष्ण वचनामृत, तीसरा खण्ड पृष्ठ ३९८-४१७ से लिया गया है।